वाणी सरोवर

अप्रैल १९७२

भुवन वाणी ट्रस्ट
रानी कटरा - लखनऊ ३.

[भुवन वाणी ट्रस्ट (पंजीकृत) लखनऊ का मुखपत्र (त्रैमासिक)]

वाणी सरोवर

प्रत्येक क्षेत्र प्रत्येक संत की बानी।
संपूर्ण राष्ट्र में घर-घर है पहुँचानी ।।

संपादक—नन्दकुमार अवस्थी प्रब०सं०—विनयकुमार अवस्थी

वर्ष—३ अप्रैल, १९७२ अंक—२

विद्वत्-परिषद्

असमिया—बसन्तकुमार सैकिया
सुश्री दीप्ति बरगुहाईं

अरबी—क़ाज़ी मुहम्मद सिद्दीक़, मुफ़्ती दारुलमुबल्लग़ीन, लखनऊ

ओड़िया—सुरेशचन्द्र नन्द एम. ए. हिन्दी-ओड़िया, रा० भा० रत्न, कटक

अंग्रेज़ी—डॉ. एम. डी. पटियाल
प्रि. उ. भा. धर्ममहा. वि. बरेली

उर्दू—डॉ.स० असदअली एम.ए.,पीएच्. डी.
सुश्री माजदा असद एम.ए. पीएच्.डी.

कन्नड़—डॉ. वी. बी. पुत्तन, एम. ए. पीएच्. डी., बंबई

कश्मीरी—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा एम. ए., पीएच्. डी. नाथद्वारा (राज.)

गुजराती—डॉ. दीनेश हरिलाल भट्ट,एम.ए. पीएच्.डी., रा०भा० रत्न, बंबई

गुरुमुखी—डॉ० अमरसिंह खालसा, डा० आफ़ डिविनिटी (यू. एस. ए.)
प्र० संपादक 'सरदार' लखनऊ

तमिऴ—वी. नटराजन एम. काम.

तेलुगु—डॉ. भीमसेन 'निर्मल', एम. ए., पीएच्.डी.,रीडर,उस्मानिया वि.वि.

नेपाली—नन्दकुमार आमात्य
सुश्री तपेश्वरी देवी आमात्य

पाली—डॉ० हर्षनारायण एम.ए.,पीएच्.डी.

पारसी—सुश्री नाज़ू दारा देबू, 'दिलनवाज़'

फ़ारसी—स० मस्ऊदहसन रिज़्वी, भारत-सरकार-सम्मानित, भू.पू. (फ़ारसी) विभागाध्यक्ष लखनऊ वि० वि०

बंगला—प्रबोध मजुमदार

मराठी—प्रा० गजानन साठे, एम.ए.,मराठी-अंग्रेजी, हिन्दी, बी.टी., पीएच्. डी. (हिन्दी), बंबई
सुश्री कुसुम ताम्बे, एम. ए.

मलयाळम—के. ए. एस. अय्यर, भू. पू. उपकुलपति लख० वि० वि०

संस्कृत—बिहारीलाल शास्त्री, काव्यतीर्थ, बरेली

सिन्धी—प्रा० कु० पी. टी. आसवाणी, एम. ए. साहित्यरत्न
एन. के. केवलरामानी, सा.मं.सिं.स.

हिन्दी—रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय 'रमेश' शास्त्री, साहित्यरत्न

वार्षिक मूल्य १०·०० एक प्रति २·५०

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	विद्वत्परिषद्	... ...	१
२	विषय-सूची	... ...	२
३	सम्पादकीय	... ...	३-६
४	ऋग्वेद १।३।१२ से १।४।८	श्री बिहारीलाल शास्त्री	७-८
५	बाइबिल के नीतिवचन	श्रीरामेश्वरप्रसाद पाण्डेय, नन्दकुमार अवस्थी	२५-३२
६	(फ़ारसी) सिर्रे अक्बर—शा. दाराशिकोह कृत ५१ उपनिषदों की व्याख्या। (क्रमशः)	अनुवादक—डॉ. हर्षनारायण एम.ए.,पीएच.डी.	१४५-१५२
७	(मलयाळम) कवि तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन्‌कृत महाभारत (क्रमशः)	सानु.लिप्य.—श्री के.ए.एस.अय्यर,भू.पू. उपकुलपति लख. वि.वि.	१५३-१६०
८	(बंगला) कृत्तिवास रामायण लं.कां.—(क्रमशः)	लिप्य.—नन्दकुमार अवस्थी, अनु.—श्री प्रबोध मजुमदार	१५३-१६०
९	(तमिळ) तिरुक्कुरळ्—सानु०लिप्य०—सुश्री गोमती अय्यर, बी. ए.	पद्य-भावानुवाद—नन्दकुमार अवस्थी (क्रमशः)	१२९-१३६
१०	(उर्दू) शरीफ़ज़ादः मिर्ज़ा रुस्वा, लिप्य—श्री विनयकुमार अवस्थी (क्रमशः)	सम्पादक—डॉ० सय्यद असद अली एम. ए., पीएच्. डी.	१२९-१३६
११	(गुरमुखी) श्री सुखमनी साहब (गुरु अर्जुनदेव की बानी—क्रमशः)	अनु०—ख्वाजः दिलमुहम्मद,लाहौर,लिप्य.—नंदकुमार अवस्थी	१४५-१५२
१२	(अरबी) रियाज़ुस्सालिहीन (ज़ादुँ सफ़र)—(क्रमशः)	लिप्यन्तरणकार—नन्दकुमार अवस्थी	११३-१२०
१३	(ओड़िया) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत—(क्रमशः)	सानु० लिप्य०—श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम.ए., कटक	१२९-१३६
१४	(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत—(क्रमशः)	अनु०—डॉ० गजानन साठे, पूना एम.ए., अंग्रेज़ी-मराठी-हिन्दी	८९-९६
१५	(असमिया) माधव कन्दली कृत रामायण—(क्रमशः)	सानु० लिप्य०—श्री प्रबोध मजुमदार	६५-७२
१६	(गुजराती) गिरधर-रामायण—(क्रमशः)	सानु. लिप्य०—डॉ. गजानन साठे,पूना, डॉ. दीनेश भट्ट, बंबई	५७-६४
१७	(तॅलुगु) रंगनाथ रामायण—(क्रमशः)	सानु० लिप्य०—डॉ० भीमसेन 'निर्मल', एम.ए., पी.एच्. डी.	४९-५६
१८	(सिन्धी) सामीअ जा सलोक—(क्रमशः)	सानु० लिप्य०—प्रा० कु० पी. आसवाणी एम. ए. सा० र०	४९-५६
१९	(कन्नड़) पम्प रामायण—रच० अभिनव पम्प नागचन्द्र (क्रमशः)	सानु. लिप्य. डॉ. वी. बी. पुत्रन एम.ए. पीएच्. डी.	३३-४०
२०	(नेपाली) भानुभक्त रामायण—(क्रमशः)	अनु० श्री नन्दकुमार आमात्य	३३-४०
२१	(कश्मीरी) रामावतार चरित—(क्रमशः)	सानु. लिप्य. डॉ. शिबनकृष्ण रैणा एम. ए. पीएच्. डी.	४१-४८

सम्पादकीय

वाणी-सरोवर पर सरकारी दृष्टिकोण

'वाणी-सरोवर' त्रैमासिक का कार्यक्रम है अंग्रेज़ी को छोड़कर भारत में व्यवहृत सभी भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य को देवनागरी लिपि में लिप्यन्तरित करके हिन्दी अनुवाद सहित सारे देश के सम्मुख प्रस्तुत करना। अंग्रेज़ी की उपेक्षा नहीं है। अंग्रेज़ी चूंकि जनपद की भाषा नहीं है, अधिक शिक्षित वर्ग में ही सीमित है, इसलिए राष्ट्रीय एकीकरण के उद्देश्य के लिए भारत में उसको उपादेय मानना समीचीन नहीं।

जनवरी, १९७० से आरंभ होकर क्रमशः अनेक भाषाओं को अपनाते हुए आज 'वाणी-सरोवर' पत्र में असमिया, बंगला, ओड़िया, नेपाली, कश्मीरी, गुरुमुखी, सिन्धी, मराठी, गुजराती, तमिळ, तेलेगु, कन्नड़, मलयाळम, संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, उर्दू आदि के अनुपम ग्रंथों का मूल पाठ देवनागरी लिपि में उनके हिन्दी अनुवाद सहित धारावाहिक प्रकाशित हो रहा है। विविध भाषाओं के जो वर्ण देवनागरी लिपि में नहीं हैं उनके लिए देवनागरी लिपि में प्रतिनिधि अक्षरों की सुपरिचित ढंग पर रचना की गई है। इन धारावाहिक प्रकाशित होने वाले ग्रंथों के फ़ार्मों को संगृहीत रखकर पृथक् पुस्तकाकार रूप में भी पूर्ण किया जा रहा है।

इस प्रकार सारी भाषाओं को, उनकी निजी लिपि में उनके निजी क्षेत्रों में अक्षुण्ण रखते हुए, देवनागरी लिपि के माध्यम से सारे राष्ट्र में प्रचारित और प्रसारित करना, उसके प्रतिफल में राष्ट्रलिपि और राष्ट्रभाषा का प्रत्येक क्षेत्र में सहज ही समादर, सारी भाषाओं का परस्पर सेतुकरण और प्रतिबिम्बीकरण, साहित्यिक और सांस्कृतिक समन्वय—इन पुनीत उद्देश्यों और उपलब्धियों से गर्भित, सारे देश में अपने ढंग के इस अद्वितीय और विलक्षण त्रैमासिक का एक और भी पहलू है :—

हमारा राष्ट्र धर्मनिरपेक्ष है। इसका एक मात्र आशय है किसी धर्मविशेष के प्रति शासन न अनुरक्त है, न विरक्त। किसी धर्मावलम्बी को दूसरे पर वरीयता नहीं। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार धर्म पर आचरण करने की स्वतंत्रता के साथ-साथ सब को समान सुविधा, सब पर समान निग्रह। किन्तु दुर्भाग्य से धर्म-निरपेक्षता का अर्थ समझा जाता है धर्म-विमुखता। धर्म का नाम मुख पर लाना गुनाह है। जननायक अथवा अधिकारी सदैव सशंकित और सतर्क रहते हैं कि कहीं धर्म की चर्चा न आ जाय और धर्मनिरपेक्षता का तमगा उनसे न छिन जाय।

किन्तु 'वाणी-सरोवर' ने धर्म-निरपेक्षता को सही माने में अपना कर वेद, पुराण, बाइबिल, क़ुर्आन, हदीस, ज़रथुस्त्र गाथा तथा विश्व के मान्य महाजनों के आप्त वचनों और ग्रंथों को देवनागरी लिपि में सानुवाद प्रकाशित करने की योजना अपनाई है।

इसमें दो प्रधान लाभ हैं। १. सभी धर्मों के कलेवर में एक ही सनातन शाश्वत धर्म की आत्मा मौजूद है। एक ही स्थान पर एकत्र उनको पढ़कर विभिन्न धर्मावलम्बियों में परस्पर घृणा और होड़ के बजाय, प्रेम और समीपत्व की भावना का उदय होता है। २. धार्मिक आख्यान और कथानक से पूर्वपरिचित होने के कारण दूसरी भाषाओं के देवनागरी में लिप्यन्तरित साहित्य को आसानी से सीखा-समझा जा सकता है। यदि रामायण आदि के बजाय किसी अपरिचित कथा अथवा निबन्ध को प्रस्तुत किया जाय तो एकभाषाभाषी के लिए दूसरी भाषा का समझना कहीं अधिक कठिन हो जायगा। फलतः भाषाई और भावनात्मक एकता का मार्ग प्रशस्त होने के बजाय अवरुद्ध हो जायगा। धर्म-निरपेक्षता के पावन लक्ष्य से हटकर देश धर्मविमुखता और फलतः धर्मान्धिता में डूब जायया। इसी सम्बन्ध में विदित हो कि राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के प्रति आज के अनुदार बंगदेश के स्व० जस्टिस शारदाचरण मित्र ने सन् १९१० ई० में यह पुष्कल घोषणा की थी कि भारत की सभी भाषाओं का उत्कृष्ट साहित्य देवनागरी लिपि में लिप्यन्तरित कर दिया जाय। २५ जनवरी, १९४२ को काशी-विश्वविद्यालय के सिलवर जुबिली समारोह के अवसर पर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा दिये गये भाषण का भी यही सार था। सकल भारतीय भाषाओं का उनकी निजी लिपि में तथा देवनागरी लिपि में सारे देश में फूलना-फलना—उस दिन का सारा भाषण इसी से ओतप्रोत था। आचार्य विनोबा भावे जी भी अनेक एकराष्ट्रीयता के पुजारियों के साथ आज राष्ट्र-स्तर पर इस काम में लगे हुए हैं। भारतीय संविधान की भी यही घोषणा है। प्रान्तीय और केन्द्रीय शासकों के नित्य इसी विषय और इसी भाषाई नीति पर आदेश और वक्तव्य प्रकाशित होते रहते हैं।

अस्तु प्रकट है कि 'वाणी-सरोवर' की योजना और कार्यक्रम कोई नई खोज नहीं है। अलबत्ता उसने मौखिक उद्गारों से आगे बढ़ कर व्यावहारिक और सक्रिय रूप अपनाया है। विना गर्वोक्ति और अतिशयोक्ति के निवेदन है कि सारे हिन्दी और अहिन्दी क्षेत्र में, कहीं भी ऐसी उल्लेखनीय कोई योजना न अपनाई गई है और न सरकारी या गैर-सरकारी क्षेत्र में इतने कम समय में ऐसी विशाल उपलब्धि प्राप्त हुई है। विचार कीजिए कि जिस दिन सभी भाषाओं के इतने बड़े ग्रंथ देवनागरी लिपि में प्रकाशित होकर आ जाँयगे, उस दिन इन सभी भाषाओं का क्षेत्र, अपने छोटे-छोटे दायरे से बढ़कर सारा देश हो जायगा; राष्ट्रभाषा के भण्डार में एक अक्षय और विशाल वृद्धि होगी; संदर्भ का कोष खुल जायगा; विभिन्न धर्म और संस्कृतियों की जानकारी और फलस्वरूप आत्मीयता और सौहार्द की भावना जागृत होगी; जाने हुए कथानक और सभी भाषाओं में वर्तमान तत्सम और तद्भव शब्दों के अपार शब्द-सागर के सहारे अनेक भाषाओं में अनायास सामान्य पैठ आदि शाखा-प्रशाखाओं से युक्त एकभाषाई कल्पतरु की सृष्टि हो जायगी।

यह है इन पंक्तियों के लेखक की गत २५ वर्षों की एकाकी साधना और उसी के द्वारा तीन वर्ष पूर्व प्रस्थापित भुवन-वाणी-ट्रस्ट और उसके मुखपत्र वाणी-सरोवर का संकल्प और कार्यक्रम। इसमें सन्देह नहीं कि देश के प्रत्येक जन-समुदाय के विद्वानों, विचारकों तथा शासकों—मंत्रियों, सचिवों और अधिकारियों ने कार्य का सम्मान किया है; कुतूहल से और संतोष से भूरि-भूरि सराहना की है; समय-समय पर आर्थिक सहायता भी की है। सम्पादक-वाणीसरोवर इस सर्वदिक्-समादर को पाकर कृतकृत्य है, अनुगृहीत है। किन्तु !

किन्तु अति विनोद की बात है कि जब 'वाणी-सरोवर' त्रैमासिक को सरकारी खरीद में सम्मिलित करने का, उसको शिक्षा-संस्थाओं और जनता तक पहुँचाने का अवसर आता है तब अधिकारी गण एक विभ्रम के शिकार हो जाते हैं। वाणी सरोवर पत्र तथा तत्सम्बंधी ग्रंथों की विलक्षणता और उपादेयता के सचमुच प्रशंसक होते हुए भी वह उसको क्रय करते समय विभ्रमों में बह जाते हैं कि १. पत्र में प्राय: धर्मग्रंथ हैं। और धर्मग्रंथों को खरीदना मानो धर्मनिरपेक्ष न होने का अपराध है; जबकि सब धर्मों के स्वरूप को समझकर ही परस्पर समीप आने और धर्मनिरपेक्ष रहने का सही मार्ग है। २. हिन्दीक्षेत्र वाले चयनकर्ता दूसरी भाषाओं के देवनागरी लिप्यन्तरण पर दृष्टि डालते ही उसे अगम्य और एक अपार साहित्यिक निधि समझने लगते हैं। मानो जन-साधारण का विषय न होकर वह केवल थीसिस के स्नातकों के ही लिए उपयुक्त हैं, जबकि बात इसके विपरीत है। वह कथाएँ लोगों की जानी-मानी, साथ में हिन्दी अनुवाद, सब भाषाओं में संस्कृत, अरबी, अंग्रेज़ी तथा देशज मिले-जुले अनेक समान शब्द—इन सब के सहारे जन-साधारण थोड़े ही परिश्रम से अपनी रुचि की किसी भी अमातृ-भाषा में सामान्य पैठ प्राप्त कर सकता है। ३. अहिन्दीक्षेत्र वाले लिप्यन्तरण में देवनागरी लिपि के अक्षरों को देखते ही आशंकित हो उठते हैं कि मानो उन पर हिन्दी लादी जा रही है। जबकि उद्देश्य इसके बिलकुल विपरीत और उनके ही अनुकूल है। हिन्दी नहीं, वरन् देवनागरी लिपि के माध्यम से ओड़िया, बंगला आदि उनकी ही भाषाओं को उनके प्रान्त के बाहर सारे देश में फैलाया जा रहा है। वाणीसरोवर सारी भाषाओं के प्रचार-प्रसार में समान रूप से संलग्न है। ४. इन भ्रमों में भ्रमित अधिकारीगण कभी-कभी यह भी अन्त में कह उठते हैं कि "पत्र उद्देश्य और उपलब्धि की दृष्टि से आम जनता तक पहुँचने की वस्तु ज़रूर है, केवल विद्वानों की अलमारियों में सँजोई रहने से भाषाई, सांस्कृतिक और भावनात्मक एकता सम्भव नहीं; किन्तु क्या किया जाय कोई पढ़ता नहीं है। ऐसे पत्र और पुस्तकें क्रय करने से क्या लाभ ?"

बात ठीक है। आजकल लोगों में पढ़ने की प्रवृत्ति नहीं है। किन्तु अकिञ्चन का अधिकारी वर्ग से प्रश्न है कि पढ़ने की प्रवृत्ति न होने से क्या पुस्तकालयों का अन्त कर दिया जाय ? पथ्य-कुपथ्य, संयम-उपचार से जनता के अनजान होने पर क्या औषधि और औषधालयों का अन्त कर दिया जाय ? क्या वाञ्छित साहित्य को तज कर जनता की मनोवृत्ति के अनुकूल साहित्य उन तक पहुँचाने में लग जाया जाय ? विदित हो कि सौ-दोसौ वर्ष पहले की सिन्धी-गुरुमुखी और अवध की ग्राम्य भाषा प्राय: समान हैं। एक राष्ट्रीय भावना से विरहित होने पर बनावटी दीवारों ने इन भाषाओं को एक दूसरे से कोसों दूर कर दिया है। दो सौ वर्ष पूर्व के सिन्धी-गुरुमुखी-साहित्य को आज के सिन्धी-पंजाबी की अपेक्षा उत्तर प्रदेश के निवासी ज़्यादा आसानी से समझ सकते हैं।

अस्तु, यदि सारे राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोना है; यदि केवल सचिवालय-स्तर पर एक से दूसरे प्रदेश में जाकर अंग्रेज़ी के सहारे काम निकाल कर सन्तुष्ट हो जाना मात्र अभीष्ट नहीं है; शताब्दियों पूर्व, केरल-निवासी आद्य शंकराचार्य (द्रविड़) ने देश को एकसूत्र में बाँधने का जो काम संस्कृत भाषा के माध्यम से किया था, वही काम अर्थात् एक राष्ट्र की भावना को देवनागरी लिपि के माध्यम से उत्पन्न करना यदि आपका

और शासन का लक्ष्य है, तो उपर्युक्त विभ्रमों को तज कर इस वाणी-यज्ञ में प्रवृत्त होइए। यह शासन का कर्त्तव्य है कि जनता में अभिरुचि उत्पन्न करे, उनको विविध भाषाओं की ओर अनुरक्त और प्रलुब्ध करे। जब तक जनता अनुरक्त नहीं है, तभी तक यह आपका कर्तव्य है। जिस दिन जनता अनुरक्त हो जायगी, उस दिन आपका उत्तरदायित्व समाप्त हो जायगा। आपका स्थान व्यापारी वर्ग ले लेगा, कोने-कोने से लिप्यन्तरण प्रकाशित होने लगेंगे। किन्तु आज के इस अलाभकर प्रकाशन में व्यापारी वर्ग की रुचि न होना उनका सहज स्वाभाविक धर्म है। और, किसी भी कारण से आपका उदासीन रहना संविधान पर आचरण और एक-राष्ट्रीयता की उपलब्धि—दोनों में व्याघात होगा।

अन्त में एक विनम्र निवेदन है कि यदि उपर्युक्त विचार समुचित नहीं हैं, यदि वाणी सरोवर द्वारा अपनाया मार्ग भाषाई सेतुकरण की भावना को जागृत करने में सक्षम नहीं है, यदि इसकी अपेक्षा श्रेयस्कर कोई अन्य मार्ग है जिसको अपना कर भाषाई माध्यम से राष्ट्र में एकीकरण की भावना को उद्बुद्ध करना अधिक सरल है, तो उसका निर्देश किया जाय। गत पचीस वर्ष से चल रही योजना को यहीं विराम देकर आप द्वारा निर्दिष्ट पथ पर शुभारंभ करने में मुझे कोई संकोच न होगा। पैंसठ वर्ष की आयु समाप्त हो चुकी। विधान-निर्मात्री-परिषद के भाषाई निर्णय के बाद से ही मेरे मन में यह संकल्प उदय हुआ था। मेरी जीविका के दूसरे स्वल्प साधन मौजूद हैं। ट्रस्ट पर मेरे प्रति आर्थिक उत्तरदायित्व नहीं है। जो भी पथ विविध भाषा-भाषियों को समीप लाने के लिए आप आदेश दें, मैं सादर उसके पालन में शेष आयु तक लगा रहूँगा।

अन्यथा, विनम्र निवेदन है कि सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण-साहित्य को केवल विद्वानों की वस्तु न समझ कर देश की आम जनता की वस्तु समझिए। उसको उन तक पहुँचा कर उनमें अभिरुचि उत्पन्न कीजिए।

कभी-कभी छोटे कामों से बड़ी उपलब्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। महात्मा गांधी के नमक-आन्दोलन को बड़ों-बड़ों ने उपहास की दृष्टि से देखा था। किन्तु समय न लगा कि उसके उग्ररूप ने देशव्यापी भूचाल उपस्थित कर दिया। अजब नहीं यह लिप्यन्तरण-कार्य सारे देश को नीर-क्षीर-वत् घुला-मिला कर एकभाषाई कुम्भपर्व साबित हो। सारे देश में, विशेष कर देवनागरी लिपि से परिचित अञ्चलों में लिप्यन्तरण साहित्य का प्रसार एवं तद्विषयक सेमिनारों की व्यवस्था कीजिए। ग्रामीण अध्यापक अपने गाँव का सबसे प्रबुद्ध पण्डित होता है। उसको किसी प्रकार अनुरक्त किया जाय कि लिप्यन्तरित नाना धर्मग्रंथों को पढ़कर वह अपने विद्यालयों और ग्रामों में सुने और सुनाये। ज़रूरत पड़ने पर इन पंक्तियों के लेखक की निःशुल्क सेवाएँ अर्पित हैं। इत्यलम्

अर्थ—अपने ज्ञान से महान् जल अर्थात् काव्य रस को बहाने वाली वेदवाणी बुद्धि, कर्म और वचन से विराजमान है।

भावार्थ—ईश्वर की सब दिव्य शक्तियों से यह संसार रूपी यज्ञ ठीक चलता है परन्तु वाणी के विना काम नहीं चल सकता। किन्तु वाणी पावका–पवित्र करने वाली हो। उद्योग से धन, बल, अन्न देने वाली हो, सत्य हो और अच्छी बुद्धियों को प्रेरित करने वाली होनी चाहिए। भगवदुपदिष्ट वेदवाणी के द्वारा धारण किया हुआ संसार-व्यवहाररूपी यज्ञ ठीक प्रकार से पूर्ण होगा।

सूक्त ४

ऋषि—मधुच्छन्दा। देवता—इन्द्र। छन्द—गायत्री।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यविद्यवि। (ऋग् १।४।१)

अर्थ—जैसे गौ को दुहने के लिए अच्छी प्रकार दूध देने वाली गाय चाहिए वैसे ही सब प्रकार की रक्षा और कल्याण के लिए सब पदार्थों को सुन्दर रूप देने वाले प्रभु को हम दिन-दिन प्राप्त करें।

भावार्थ—पदार्थों को सुन्दर बनाने वाले कलाकार वैज्ञानिक कवियों को भी प्राप्त करें।

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब।
गोदा इद्रेवतो मदः। (ऋग् १।४।२)

अर्थ—हे सोमपान करने वाले प्रभु! हमारे यज्ञ में आकर सोमपान करो। तुम किरणों का प्रकाश देने वाले सूर्य के समान हो, धनी हो, अतः हमें भी धन दो, प्रकाश दो और हर्षित करो।

भावार्थ—सोमपा का अर्थ सुन्दर भावनाओं के रक्षक भी है। गो का अर्थ सूर्य-चन्द्र की किरणें भी हैं।

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्।
मा नो अति ख्य आ गहि। (ऋग् १।४।३)

अर्थ—हे प्रभो! तुम्हारे समीप पहुँचे हुए अच्छी मति रखने वालों का (ब्रह्मज्ञानियों का) हम लाभ करें। उनका सत्संग करें, हम भक्तों को त्यागो मत, हमें प्राप्त होओ।

भावार्थ—ब्रह्म के समीप पहुँचे अर्थात् ब्रह्मज्ञानी योगियों की संगति की जाये। अपना आचरण ऐसा बनाया जाये कि वे विद्वान् हमें त्यागें नहीं बल्कि हमें उपदेश दें।

परे॑हि वि॒ग्रमस्तृ॑त॒मिन्द्रं॑ पृच्छा वि॒पश्चित॑म् ।
यस्ते॒ सखि॑भ्य॒ आ वर॑म् । (ऋग् १।४।४)

अर्थ—हे भक्त! तू उत्तम विद्वान्, अहिंसक, क्षमाशील, ऐश्वर्ययुक्त अर्थात् विद्या की दीप्ति से प्रकाशित ज्ञानी विद्वान् को प्राप्त कर और उससे पूछ अर्थात् ज्ञान प्राप्त कर। जो तेरे मित्रों को भी उत्तम उपदेश देगा।

भावार्थ—ईश्वर मनुष्यों को उपदेश देते हैं कि उत्तम कल्याणकारक ज्ञानियों से ज्ञान प्राप्त करो।

उ॒त ब्रु॑वन्तु नो॒ निदो॒ निर॒न्यत॑श्चिदारत ।
दधा॑ना॒ इन्द्र॒ इद्दुवः॑ । (ऋग् १।४।५)

अर्थ—हमारे निन्दक चाहे हमें कहें कि (अपने धर्म-मार्ग से) दूर हट जाओ। तब भी हम हे इन्द्र! तुम्हारी ही स्तुति धारण किये रहें। हम उन दुष्टों से कह दें कि दूर निकल जाओ।

भावार्थ—मन के आलस्य प्रमाद ही वे निन्दक दुष्ट हैं जो ज्ञान से हटाते हैं। उनके प्रभाव से बचो और उन दुष्ट विचारों को दूर करो।

उ॒त नः॑ सु॒भगाँ॑ अ॒रिर्वो॒चेयु॑र्दस्म कृ॒ष्टयः॑ ।
स्यामेदिन्द्र॑स्य॒ शर्म॑णि । (ऋग् १।४।६)

अर्थ—हे शत्रुनाशक इन्द्र! हमारा शत्रु और अन्य सब जन हमें सौभाग्ययुक्त कहें और हम सदा इन्द्र की ही शरण में रहें।

भावार्थ—भगवान् के भक्त को सर्व जन सराहते हैं। उसके शत्रु को भी उसको भाग्यशाली मानना पड़ता है।

एमा॒शुमा॒शवे॑ भर यज्ञ॒श्रियं॑ नृ॒माद॑नम् ।
प॒त॒यन्म॑न्द॒यत्स॑खम् । (ऋग् १।४।७)

अर्थ—हे ईश्वर! शीघ्र कार्य-सम्पादन के लिए शीघ्र काम करने वाले, यज्ञ की शोभा बढ़ाने वाले, सब मनुष्यों को आनन्दित करने वाले और सब मित्रों को प्रसन्न करने वाले रक्षक को इस स्थान पर स्थापित करो।

भावार्थ—रक्षक नेता ऐसा हो जो सबको सुख दे और शोभा बढ़ावे।

अ॒स्य पी॒त्वा श॑तक्रतो घ॒नो वृ॒त्राणा॑मभवः ।
प्राव॒ो वाजे॑षु वा॒जिन॑म् । (ऋग् १।४।८)

अर्थ—हे शतक्रतो! (सौ यज्ञ करने वाले अर्थात् संसार के विविध काम करने वाले ईश्वर वा सम्राट्) मेरे इस सोम (भक्ति-भाव के रस)

बुद्धिमत्त्वाभिमानः को भवेत् प्रज्ञोपजीविनाम् ।
अन्यदीयैरलङ्कारैर्नाहङ्कारो विभूषणे ॥

—सु० र० भा० सामान्यनीति ७०० ।

(परमेश्वर के द्वारा दी गई) बुद्धि के सहारे जीवन-यापन करने वाले मनुष्यों को अपनी बुद्धिमत्ता का अभिमान नहीं करना चाहिए; क्योंकि कहीं दूसरों के गहनों को पहन कर किसी के मन में अभिमान उत्पन्न हो सकता है ?

संपत्ति और अन्नादि को ईश्वर के अर्पण करना

९ अपनी संपत्ति के द्वारा, और अपनी भूमि की सारी पहिली उपज
दे देकर यहोवा की प्रतिष्ठा करना; १० इस प्रकार तेरे खत्ते भरे
और पूरे रहेंगे, और तेरे रसकुण्डों से नया दाखमधु उमँडता रहेगा ।

--बाइबिल–नीतिवचन ३/९-१०

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम् ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता ९/२७

हे अर्जुन ! तुम जो कुछ करते हो, जो खाते हो, जो हवन करते हो, जो दान करते हो और जो तप करते हो वह सभी कुछ मेरे अर्पण कर दो ।

ताड़ना का बुरा न मानना

११ हे मेरे पुत्र, यहोवा की शिक्षा से मुंह न मोड़ना, और जब वह
तुझे डाँटे, तब तू बुरा न मानना, १२ क्योंकि यहोवा जिससे प्रेम
रखता है उसको डाँटता है, जैसे कि बाप उस बेटे को जिसे वह अधिक
चाहता है ।

--बाइबिल–नीतिवचन ३/११-१२

लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः ।
तस्मात् पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्नतु लालयेत् ॥

—सु० र० भा० सामान्यनीति ३४३

लाड़-प्यार में बहुत दोष (बुराइयाँ) हैं तथा ताडन (डाट-फटकार आदि) में बहुत गुण हैं, इसलिए पुत्र और शिष्य का लाड़-प्यार न करके ताडन (डाट-फटकार आदि) ही करना चाहिए ।

गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिस्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम् ।
अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसन्ति ।।

—भामिनी-विलास

गुरुजनों (बड़े लोगों) की कठोर डाट-फटकार को सहनेवाले मनुष्य ही ऊँचा पद प्राप्त करते हैं । विना सान पर चढ़े मणि (हीरे आदि रत्न) राजाओं के मुकुटों में नहीं जड़े जाते ।

बुद्धि की महत्ता

१३ क्या ही धन्य है वह मनुष्य जो बुद्धि पाए, और वह मनुष्य
जो समझ प्राप्त करे, १४ क्योंकि बुद्धि की प्राप्ति चान्दी की प्राप्ति
से बड़ी, और उसका लाभ चोखे सोने के लाभ से भी उत्तम है ।
१५ वह मूंगे से अधिक अनमोल है, और जितनी वस्तुओं की तू लालसा
करता है, उनमें से कोई भी उसके तुल्य न ठहरेगी । १६ उसके
दाहिने हाथ में दीर्घायु, और उसके बाएँ हाथ में धन और महिमा हैं ।
१७ उसके मार्ग मनभाऊ हैं, और उसके सब मार्ग कुशल के हैं ।
१८ जो बुद्धि को ग्रहण कर लेते हैं, उनके लिए वह जीवन का वृक्ष
बनती है; और जो उसको पकड़े रहते हैं, वह धन्य हैं । १९ यहोवा
ने पृथ्वी की नींव बुद्धि ही से डाली; और स्वर्ग को समझ ही के द्वारा
स्थिर किया । २० उसी के ज्ञान के द्वारा गहिरे सागर फूट निकले,
और आकाशमण्डल से ओस टपकी है । २१ हे मेरे पुत्र, ये बातें
तेरी दृष्टि की ओट न होने पाएँ; खरी बुद्धि और विवेक की रक्षा कर,
२२ तब इनसे तुझे जीवन मिलेगा, और ये तेरे गले का हार बनेंगे ।
२३ और तू अपने मार्ग पर निडर चलेगा, और तेरे पाँव में ठेस न
लगेगी । २४ जब तू लेटेगा, तब भय न खाएगा, जब तू लेटेगा, तब
सुख की नींद आएगी ।

—बाइबिल–नीतिवचन ३/१३-२४

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।

—ऐतरेय ब्राह्मण

मेरे दाहिने हाथ में कर्तव्य तथा बायें हाथ में सफलता है ।

वेदों में सर्वश्रेष्ठ गायत्री मंत्र में भी बुद्धि की ही याचना की गई है :—

ॐ भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।

—यजुर्वेद ३६/३

हम संसार को उत्पन्न करने वाले देव सविता के भजने योग्य तेज का ध्यान करते हैं। वह हमारी बुद्धि को प्रेरित करे (बढ़ाये)।

बुद्धि प्राप्ति के लिए अनेक देवताओं से प्रार्थना:—

यां मेधां देवगणा पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु॥
मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे॥

यजुर्वेद ३२/१४-१५

देवगण तथा पितृगण जिस बुद्धि की उपासना करते हैं, हे अग्निदेव तुम वही बुद्धि देकर मुझे मेधावी (बुद्धिमान्) बनाओ।

वरुण, अग्नि, प्रजापति, इन्द्र, वायु तथा धाता आदि सभी देवता मुझे मेधा (बुद्धि) प्रदान करें।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी तीन प्रकार की बुद्धि बताई है:—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

—श्रीमद्भगवद्गीता १८/३०-३२

जिस बुद्धि के द्वारा प्रवृत्तिमार्ग (कर्ममार्ग); निवृत्तिमार्ग (ज्ञानमार्ग), कर्तव्य कर्म, अकर्तव्य कर्म, भय, निर्भयता, बन्धन तथा मोक्ष का यथार्थ रूप से (ठीक-ठीक) ज्ञान होता है वह बुद्धि सत्त्विकी (सत्त्वगुणवाली) है।

जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को यथार्थ रूप से नहीं जान पाता वह बुद्धि राजसी (रजोगुण वाली) है।

जो बुद्धि अधर्म को धर्म तथा सभी अर्थों को विपरीत मानती है वह बुद्धि तामसी (तमोगुणवाली) है।

बुद्धौ कलुषभूतायां विकारे समुपस्थिते।
अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥

—सु० र० भा० सामान्यनीति ६०३

जब मनुष्य की बुद्धि मलिन हो जाती है तो मन में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके कारण अन्याय ही न्याय प्रतीत होने लगता है और यह भावना हृदय से कभी दूर नहीं होती।

किं दुष्करसाधनं प्रज्ञा।

—सु० र० भा० सामान्यनीति ७९१

बुद्धि असाध्य (असम्भव) कार्यों को भी सिद्ध कर देती है।

सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत् कृतम्
सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्।

—सु० र० भा० सामान्यनीति ९०६

बुद्धि के द्वारा सोच-विचार कर जो बात कही जाती है या जो काम किया जाता है वह चिरकाल (बहुत समय) तक स्थिर रहता है।

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।

—भर्तृहरिनीतिशतक १०

बुद्धि से रहित मनुष्यों का सैकड़ों प्रकार से पतन होता है।

यत्र नास्ति गतिर्वायोः रश्मीनां च विवस्वतः।
तत्रापि प्रविशत्याशु बुद्धिर्बुद्धिमतां सदा।

—पञ्चतन्त्र अपरीक्षितकारक

जहाँ पर वायु तथा सूर्य की किरणें भी नहीं जा सकतीं वहाँ पर भी बुद्धिमानों की बुद्धि पहुँच जाती है।

उदीरितोऽर्थः पशुनापि गृह्यते
हयाश्च नागाश्च वहन्ति चोदिताः।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः
परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः॥

—सु० र० भा० सामान्यनीति ९११

कहने के अनुसार तो पशु भी करने लगते हैं, देखों हाथी तथा घोड़े सिखाने पर सभी काम करने लगते हैं। किन्तु बुद्धिमान् मनुष्य की विशेषता यही है कि वह विना बतलाये हुए अभिप्राय को भी समझ लेता है। बुद्धि का फल तो यही है कि वह इशारे से ही दूसरों की बात समझ ले।

महाकवि माघ ने बुद्धि की तुलना शस्त्र से करते हुए कहा है—

बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यंगो घनसंवृतिकञ्चुकः।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः॥

—शिशुपालवध महाकाव्य

जिस राजा का बुद्धि शस्त्र, मन्त्री आदि सात प्रकृतियाँ अंग, सुरक्षा कवच, गुप्तचर नेत्र तथा दूत मुख है वही राजा वास्तव में राजा है।

नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मागान्मम।

—मुद्राराक्षस नाटक

महान् नीतिज्ञ आचार्य कौटिल्य बुद्धि की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि चाहे मेरा सर्वस्व चला जाए किन्तु मेरी बुद्धि बनी रहे।

सोपधानां धियं धीराः स्थेयसीं खट्वयन्ति ये।
तत्रानिशं निषण्णास्ते जानते जातु न श्रमम्॥

—शिशुपालवध महाकाव्य

जो धीर (बुद्धिमान्) व्यक्ति स्थिर बुद्धि को तकियायुक्त शय्या के समान मान कर उस पर सुखपूर्वक सोते हैं उनका सारा श्रम दूर हो जाता है।

एकं हन्यान्नवा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्ति राष्ट्रं सनायकम्॥

—विदुरनीति

धनुर्धर के द्वारा चलाया हुआ बाण शायद एक व्यक्ति का संहार कर सके या न कर सके किन्तु बुद्धिमान् मनुष्य के द्वारा प्रयोग की हुई बुद्धि राजा के सहित सम्पूर्ण राष्ट्र का विनाश कर डालती है।

शस्त्रैर्हतास्तु रिपवो न हता भवन्ति,
प्रज्ञाहताश्च नितरां सुहता भवन्ति ।
शस्त्रं निहन्ति पुरुषस्य शरीरमेकं
प्रज्ञा कुलं च विभवं च यशश्च हन्ति ॥

—सु० र० भा० सामान्यनीति ९५२

शस्त्रों के द्वारा मारे हुए शत्रु मारे हुए नहीं कहे जा सकते, बुद्धि के द्वारा मारे हुए शत्रु ही वास्तव में भलीभाँति मारे हुए कहे जा सकते हैं; क्योंकि शस्त्र तो केवल मनुष्य के अकेले शरीर को ही मार सकता है, किन्तु बुद्धि शत्रु के कुल, वैभव तथा यश आदि सब का नाश कर देती है ।

निर्भयता

२५ अचानक आनेवाले भय से न डरना, और जब दुष्टों पर विपत्ति आ पड़े, तब न घबराना; २६ क्योंकि यहोवा तुझे सहारा दिया करेगा, और तेरे पांव को फन्दे में फँसने न देगा ।

—बाइबिल—नीतिवचन ३/२५-२६

तावद् भयाद्धि भेतव्यं यावद् भयमनागतम् ।
आगतं तु भयं वीक्ष्य प्रहर्तव्यमभीतवत् ॥

सु० र० भा० सामान्यनीति ५००

भय से तभी तक डरना चाहिए जब तक भय पास न आये, किन्तु जब भय सामने आ जाये तो निर्भयतापूर्वक (निडर बनकर) उसका सामना करना चाहिए ।

परोपकार

२७ जिनका भला करना चाहिए, यदि तुझमें शक्ति रहे, तो उनका भला करने से न रुकना । २८ यदि तेरे पास देने को कुछ हो, तो अपने पड़ोसी से न कहना कि जा कल फिर आना, कल मैं तुझे दूंगा । २९ जब तेरा पड़ोसी तेरे पास बेखटके रहता है, तब उसके विरुद्ध बुरी युक्ति न बाँधना । ३० जिस मनुष्य ने तुझसे बुरा व्यवहार न किया हो, उससे अकारण मुक़द्दमा खड़ा न करना । ३१ उपद्रवी पुरुष के विषय में डाह न करना, न उसकी सी चाल चलना;

३२ क्योंकि यहोवा कुटिल से घृणा करता है, परन्तु वह अपना भेद सीधे लोगों पर खोलता है* ।

—बाइबिल–नीतिवचन ३/२७-३२

परोपकारः कर्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि ।
परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि ॥ १ ॥

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
तन्निमित्तो वरं त्यागो विनाशे नियते सति ॥ २ ॥

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन् को न जीवति मानवः ।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति ॥ ३ ॥

परोपकारशून्यस्य धिङ् मनुष्यस्य जीवितम् ।
जीवन्तु पशवो येषां चर्माप्युपकरिष्यति ॥ ४ ॥

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः,
परोपकाराय वहन्ति नद्यः ।
परोपकाराय दुहन्ति गावः,
परोपकारार्थमिदं शरीरम् ॥ ५ ॥

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन,
दानेन पाणिर्नतु कङ्कणेन ।
विभाति कायः खलु सज्जनानां
परोपकारेण न चन्दनेन ॥ ६ ॥

सु० र० भा० परोपकार प्रशंसा १,२,६,७,१०, १२ ।

अपने प्राण देकर तथा अपना धन देकर भी दूसरे की भलाई करनी चाहिए, क्योंकि दूसरों की भलाई करने से जो पुण्य प्राप्त होता है वह सैकड़ों यज्ञों के भी करने से नहीं प्राप्त हो सकता ॥ १ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि दूसरों की भलाई के लिए अपना धन और जीवन न्यौछावर कर दे, क्योंकि धन और प्राणों का नाश होना निश्चित है इसलिए यदि परोपकार में इनका विनाश हो तो इससे बढ़कर श्रेष्ठ बात और क्या हो सकती है ॥ २ ॥ इस संसार में अपने लिए तो सभी मनुष्य जीवित रहते हैं, किन्तु जो मनुष्य परोपकार (दूसरों की भलाई) के लिए जीवित रहता है उसी का जीवन धन्य है ॥ ३ ॥ परोपकारहीन मनुष्य के जीवन को धिक्कार है। ऐसे मनुष्यों से अच्छा जीवन उन पशुओं का है जिनके शरीर का चमड़ा दूसरों का उपकार करता है ॥ ४ ॥ परोपकार करने के ही लिए वृक्ष फल देते हैं, परोपकार करने के ही लिए

* मूल में—उसका भेद सीधे लोगों के पास है ।

नदियाँ बहती हैं, परोपकार करने के ही लिए गायें दूध देती हैं। इस प्रकार परोपकार करने के ही लिए यह मानव शरीर प्राप्त हुआ है ।। ५ ।। कानों की शोभा कुण्डलों के पहनने से नहीं होती। बल्कि शास्त्रों के उपदेशों के सुनने से होती है। हाथों की शोभा सोने के कंकणों (कड़ों) के पहनने से नहीं होती है, बल्कि दान करने से होती है। इसी प्रकार सज्जनों के शरीर की शोभा चन्दन लगाने से नहीं होती, बल्कि परोपकार (दूसरों की भलाई) करने से होती है ।। ६ ।।

दुष्टों और सज्जनों के प्रति ईश्वर का व्यवहार

३३ दुष्ट के घर पर यहोवा का शाप और धर्मियों के वासस्थान पर उसकी आशीष होती है। ३४ ठट्ठा करनेवालों से वह निश्चय ठट्ठा करता है और दीनों पर अनुग्रह करता है। ३५ बुद्धिमान् महिमा को पाएँगे, और मूर्खों की बढ़ती अपमान ही की होगी।

--बाइबिल--नीतिवचन ३/३३-३५

नीतिवचन ३/३३-३५ में जिस प्रकार कहा गया है कि "दुष्ट के घर पर यहोवा का शाप और धर्मियों के वासस्थान पर उसकी आशीष होती है," उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है कि "मैं सज्जनों की रक्षा करने के लिए, दुष्टों का दमन करने के लिए, तथा धर्म की स्थापना करने के लिए बारम्बार अवतार धारण करता हूँ।"

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

—श्रीमद्भगवद्गीता ४/८

ईश्वर की (अथवा गुरुजन की) शिक्षा पर ध्यान दो

हे मेरे पुत्रो, पिता की शिक्षा सुनो, और समझ प्राप्त करने में मन लगाओ। २ क्योंकि मैंने तुम को उत्तम शिक्षा दी है; मेरी शिक्षा को न छोड़ो। ३ देखो, मैं भी अपने पिता का पुत्र था, और माता का अकेला दुलारा था, ४ और मेरा पिता मुझे यह कहकर सिखाता था, कि तेरा मन मेरे वचन पर लगा रहे; तू मेरी आज्ञाओं का पालन कर, तब जीवित रहेगा।

—बाइबिल—नीतिवचन ४/१४

धनुर् गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत ।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य ! विद्धि ।।३।।

अनु०–हे सोम्य ! महान् अस्त्र उपनिषद्-रूपी धनुष् ले कर [उस पर] उपासना द्वारा तीक्ष्ण किया हुआ बाण चढ़ा । उसे खींचकर ब्रह्मभावानुगत चित्त से उसी अक्षररूप लक्ष्य का वेधन कर । (३)

सि० अ०—उपनिषदों को जो कि अद्वैत वाक्य हैं धनुष बना कर, उपासना का बाण उस पर सन्धान कर के, उसे मन की शक्ति से खींच कर, जो उस का अभिलाषी है और किसी अन्य की ओर चलायमान नहीं है, उस अक्षर सत्ता की ओर ले जा जो तेरी साधना का लक्ष्य है । [३]

प्रणवो धनुः, शरो ह्यात्मा, ब्रह्म तल् लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं, शरवत् तन्मयो भवेत् ।।४।।

अनु०–प्रणव धनुष, आतमा बाण, और ब्रह्म उस का लक्ष्य कहा जाता है । उस का सावधान हो कर वेधन करना चाहिए, [और] बाण के समान तन्मय हो जाना चाहिए । (४)

सि० अ०—हे सोम्य ! ओम् को धनुष बना कर, जीवात्मा को तीर बना कर, और ब्रह्म को लक्ष्य बना कर समाहित और सावधान हो कर उस बाण के समान, जो लक्ष्य को वेध देता है, जीवात्मा को ब्रह्म में प्रविष्ट करा, ताकि तू स्वयं लक्ष्य बन जाय । यह बुद्धि का लक्ष्य नहीं है कि चूक की आशंका हो । यह वह लक्ष्य है जो सर्वत्र पूर्ण है और जिस में चूक की आशंका नहीं । जीवात्मा ऐसा बाण है जिस से प्रत्येक दिशा में लक्ष्य साधा जा सकता है और वह जिधर भी पड़ता है उसी तक पहुँचता है । बाण का संधान करने वाला भी स्वयं सर्वत्र विद्यमान है । अतः यह शंका न कर । जहाँ इस प्रकार का धनुष, इस प्रकार का बाण, इस प्रकार का लक्ष्य, और इस प्रकार का बाण फेंकने वाला होता है वहाँ चूक जाना संभव नहीं । ऋग्वेद को धनुष कर के, यजुर्वेद को बाण कर के, और सामवेद को प्रत्यंचा कर के सामवेद का गायन करते हुए ब्रह्म को लक्ष्य बनाये, जो ब्रह्म वेदस्वरूप, प्रकाशमान, और शुद्ध है । [४]

यस्मिन् द्यौः, पृथिवी, चान्तरिक्ष-
मोतं मनः सह प्राणैश् च सर्वैः
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या
वाचो विमुञ्चथामृतस्यैव सेतुः ॥५॥

अनु०–जिस में द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष, और समस्त प्राणों सहित मन ओतप्रोत है उसी एक आत्मा को जानो, अन्य बातों को छोड़ दो; यह अमृत (मोक्ष) का ही सेतु है। (५)

सि० अ०—स्वर्ग, भूमि, अन्तरिक्ष, और मन समस्त इन्द्रियों के साथ उस की सत्ता की डोर से खिंचे हुए हैं, जिस प्रकार मोती के दाने एक ही धागे में ओतप्रोत होते हैं। उस एक धागे को आत्मा जानो और शेष सभी बातें त्याग दो। वह आत्मा मुक्ति का सेतु है। [५]

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः,
स एषोऽन्तश् चरते बहुधा जायमानः।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं,
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥६॥

अनु०–रथचक्र की नाभि में अरों के समान जहाँ नाडियाँ जुड़ती हैं उस के भीतर यह विविध रूपों में उत्पन्न होने वाला [आत्मा] संचार करता है। आत्मा का 'ॐ' इस प्रकार ध्यान करो। अन्धकार (अज्ञान) पार करने में तुम्हारा कल्याण हो। (६)

सि० अ०—जिस प्रकार रथ की नाभि में सभी अरे सुदृढ़ होते हैं उसी प्रकार जो नाड़ी हृदय-कमल में प्रविष्ट होती है और जिस से नाड़ियाँ जुड़ी होती हैं उस हृदय के बीच जिस रूप में चाहे वह आत्मा विचरण करता है। उसी आत्मा को ओ३म् जान कर उपासना करो, क्योंकि वह तुम्हारे लिए अज्ञान के सागर से पार कराने में मंगलमय है। [६]

यः सर्वज्ञः सर्वविद्, यस्यैष महिमा भुवि,
दिव्ये ब्रह्मपुरे[1] ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ।
मनोमयः प्राणशरीरनेता
प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ।
तद् विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा
आनन्दरूपममृतं यद् विभाति ।।७।।

अनु०–जो सर्वज्ञ और सर्ववित् है, जिस की यह महिमा पृथ्वी पर [स्थित] है, वह यह आत्मा दिव्य ब्रह्मपुर आकाश में प्रतिष्ठित है। वह मनोमय, प्राण और शरीर को ले जाने वाला पुरुष हृदय का आश्रय कर अन्न (अन्नमय देह) में स्थित है। धीरजन विज्ञान द्वारा उस का सम्यक् साक्षात्कार करते हैं जो आनन्दस्वरूप अमृत ब्रह्म प्रकाशित हो रहा है। (७)

सि० अ०—वह सर्वज्ञ है और वह सब का प्रापक है। उस की महिमा पृथ्वी पर है, आकाश में है, और ब्रह्मपुर में है—ब्रह्मपुर अर्थात् मानव शरीर जो ब्रह्मनगर है और परम ज्ञान से उद्भासित है। उस रन्ध्र में जो हृदय के भीतर है आत्मा का निवास है।[2] उसी की उपासना करो। वह आत्मा मन के साथ मन बना हुआ है। वही शरीर और उस की इन्द्रियों को गतिमान करता है। इस शरीर में जो अन्न-स्वरूप है वह समीपस्थ हो कर वर्तमान है। जो ज्ञानी इन्द्रियों पर वश प्राप्त कर लेते हैं वे उसे बुद्धि के प्रकाश से देखते हैं। वह आत्मा आनन्द-स्वरूप है, अमर है, प्रकट है। [७]

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्, छिद्यन्ते सर्वसंशयाः,
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।८।।

अनु०–उस पर और अवर (कारणकार्यरूप ब्रह्म) का साक्षात्कार हो जाने पर हृदय-ग्रन्थि टूट जाती है, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं, और इस [जीव] के कर्म क्षीण हो जाते हैं। (८)

---

१ छान्दोग्योपनिषद् ८.१.१

२ दाराशिकोह ने यहाँ इस मंत्र को तोड़कर एक नए मंत्र की परिकल्पना की है। तदनुसार आगे मंत्रो का संख्या में एक मंत्र की वृद्धि हो रही थी, किन्तु हिन्दी अनुवादक ने उसे ठीक कर लिया है।

सि० अ०—उस के दर्शन से हृदय की ग्रन्थिआँ खुल जाती हैं, सारे संशय दूर हो जाते हैं, और पुण्य-कर्म और पाप-कर्म उस से दूर हो जाते हैं। [८]

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्,तद् यदात्मविदो विदुः ॥९॥

अनु०–निर्मल और निरंश ब्रह्म हिरण्यमय (ज्योतिर्मय) परम कोश में [विद्यमान] है। वह शुद्ध, ज्योतिओं की ज्योति है। वह है जिसे आत्मज्ञानी पुरुष जानते हैं। (९)

सि० अ०—निर्विशेषता में, वह निर्विशेषों में निर्विशेषतम है और, सविशेषता में, वह सविशेषों में सविशेषतम है। ब्रह्म शुद्ध और पवित्र है, कलायुक्त नहीं है, और इतना ज्योतिर्मय है कि वह ज्योतिओं की ज्योति है और इतना प्रकाशमान है कि वह प्रकाशों का प्रकाश है। जो लोग विज्ञानमय कोष में जो कि ज्योतिष्मान है उस ब्रह्म को आत्मा जानते हैं अर्थात् जीवात्मा और आत्मा को एक जानते हैं वे ही उसे जानते हैं। [९]

न तत्र सूर्यो भाति, न चन्द्रतारकं,
नेमा विद्युतो भान्ति; कुतोऽयमग्निः ?
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं,
तस्या भासा सर्वमिदं विभाति ॥१०॥[१]

अनु०–वहाँ न सूर्य प्रकाशित होता है और न चन्द्रमा या तारे। [वहाँ] ये बिजलियाँ भी नहीं चमकतीं, फिर यह अग्नि किस गिनती में है ? उस के प्रकाशित होने से ही सब प्रकाशित होता है और यह सब कुछ उसी के प्रकाश से प्रकाशमान है। (१०)

सि० अ०—सूर्य, चन्द्र, तारागण, विद्युत, और अग्नि के प्रकाश उस के प्रकाश को नहीं पा सकते। उसी के प्रकाश से ये सब प्रकाशित हैं। सारे प्रकाश उसी के हैं, सूर्य और चन्द्र उस तक नहीं पहुँच सकते, वायु उस तक नहीं पहुँच सकती, देवता उस तक नहीं पहुँच सकते। उस तक केवल उपासना द्वारा पहुँचा जा सकता है। अन्य किसी भी मार्ग से उसे नहीं पाया जा सकता। वह सभी महाभूतों का उत्पादक है, वह अपने ही प्रकाश से प्रकाशित है, वह शुद्ध और मुक्त है। [१०]

१ कठोपनिषद् २.२.१५; श्वेताश्वतरोपनिषद् ६.१४

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्, ब्रह्म
पश्चाद्, ब्रह्म दक्षिणतश् चोत्तरेण,
अधश् चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं
विश्वमिदं वरिष्ठम् ।।११।।

अनु०—यह अमृत ब्रह्म ही आगे है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दायीं-बायीं ओर है, नीचे-ऊपर फैला हुआ यह विश्व सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है।(११)

सि० अ० जो कुछ दिखायी देता है वह ब्रह्म ही है। वह ब्रह्म अमर है, वह आगे है, वह पीछे है, वह बाएँ है, वह दाएँ है, वह ऊपर है, वह नीचे है, वह सर्वत्र पूर्ण है। जो कुछ दिखायी देता है वही परब्रह्म है। [११]

।। इति द्वितीयः खण्डः ।।

तृतीयो मुण्डकः

प्रथमः खण्डः

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।१।।[1]

अनु०—साथ-साथ रहने वाले दो पक्षी सखा एक ही वृक्ष का आश्रय कर के रहते हैं। उन में एक तो स्वादिष्ट पिप्पल (कर्मफल) का भोग करता है और दूसरा भोग न कर के केवल देखता रहता है। (१)

सि० अ०—दो सुन्दर पक्षी हैं। वे दोनों सदा साथ रहते हैं और एक दूसरे के सखा हैं। वे एक वृक्ष पर निवास करते हैं। उन में से एक उस वृक्ष के फल को स्वादिष्ट समझ कर खाता है और दूसरा कुछ नहीं खाता और द्रष्टा मात्र है। इन दो पक्षियों से, जिन में से एक खाता है और दूसरा नहीं खाता और द्रष्टा मात्र है, तात्पर्य यह है कि जो खाता है वह जीवात्मा है और जो नहीं खाता और द्रष्टा मात्र है वह परमात्मा है। वृक्ष से शरीर अभिप्रेत है और फल से, जिसे स्वादिष्ट समझ कर खाता है, कर्मफल। [१]

---

१ ऋग्वेद १.१६४.२०; अथर्ववेद ९.९.२०; श्वेताश्वतरोपनिषद् ४.६; कठोपनिषद् १.३.१ और उस की टिप्पणी भी द्रष्टव्य है।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो
अनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश-
मस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥२॥[1]

अनु०–[ईश्वर के साथ] एक ही वृक्ष से संलग्न जीव दीनता के कारण मोहित हो कर शोक करता है। वह जिस समय अपने से भिन्न आनन्दस्वरूप ईश्वर और उस की महिमा को देखता है उस समय शोक-रहित हो जाता है। (२)

सि० अ०—वह पक्षी जो उस वृक्ष का फल खाता है अज्ञान के कारण अपने ही स्वभाव से अवगत नहीं है। वह इसी कारण शोक और दुःख में है। जब वह उस पक्षी के तत्त्व को समझ लेता है जो कुछ नहीं खाता और कौतुक देखता है तो वह भी भोग से विरक्त हो जाता है और उसी के समान हो जाता है। अर्थात् वह कर्म के बंधन से मुक्त, शोक-रहित, और दुःख-रहित हो जाता है। [२]

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं,
कर्तारमीशं, पुरुषं, ब्रह्मयोनिम्,
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय[2]
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥३॥

अनु०–जिस समय द्रष्टा स्वर्णाभ जगत्कर्ता, ईश्वर, पुरुष, सर्वयोनि-स्वरूप को देखता है उस समय वह विद्वान् पाप-पुण्य दोनों को त्याग कर निर्मल हो अत्यन्त सम भाव को प्राप्त हो जाता है। (३)

सि० अ०—जिस समय जीवात्मा ज्ञानी हो जाता है उस समय आत्मा को ऐसा देखता है कि वह आत्मा स्वयंप्रकाश है, सब का उत्पादक है, सब का स्वामी है, सर्वत्र पूर्ण है, और हिरण्यगर्भ उसी से उत्पन्न हुआ है। जिस समय वह उसे इस प्रकार जान लेता है, वह ज्ञानी शुभ और अशुभ कर्मों के फल को त्याग कर उस पवित्र आत्मा से एकीभूत हो जाता है। [३]

---

१. श्वेताश्वतरोपनिषद् ४.७

२ मैत्रायण्युपनिषद् ६.१८ में भी आदि से यहाँ तक पाया जाता है।

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर् विभाति,
विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी ।
आत्मक्रीड[1], आत्मरतिः, क्रियावा-
नेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ।।४।।

अनु०—यह प्राण है जो सम्पूर्ण भूतों के रूप में भासमान हो रहा है। [इसे] जान कर विद्वान् अतिवादी (बकवास करने वाला) नहीं होता। यह आत्मा में क्रीडा करने वाला, आत्मा में रमण करने वाला, क्रियावान् पुरुष ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठतम है। (४)

सि० अ०—वह प्राणों का प्राण है, वह सभी भूतों में भासमान है। जो कोई उसे जान लेता है वह ज्ञानी और ब्रह्मज्ञ हो जाता है। वह ब्रह्मज्ञ जो कुछ बोलता है उस के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह अधिक नहीं बोलता। क्यों कि वह ब्रह्म की बात बोलता है। सब कुछ ब्रह्म में है और ब्रह्म सब से महान् है। वह ब्रह्मवित् और ज्ञानी कैसा है ? वह सदा आत्मा में रमण करने वाला है, वह अपने आप से क्रीड़ा करने वाला और आनन्दित होने वाला है। वह अपना मित्र आप है। यदि वह कर्म और उपासना भी यदृच्छापूर्वक करता है तो वह ज्ञानियों और महान् ब्रह्म-वादियों के बीच महान् होता है। [४]

सत्येन लभ्यस् तपसा ह्येष आत्मा,
सम्यग्ज्ञानेन, ब्रह्मचर्येण नित्यम्,
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।।५।।

अनु०—यह आत्मा सर्वदा सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान, और ब्रह्मचर्य द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। जिसे दोषहीन योगिजन देखते हैं वह ज्योतिर्मय शुभ्र आत्मा शरीर के भीतर रहता है। (५)

सि० अ०—उस आत्मा की प्राप्ति का मार्ग यही सत्य, तप, और उस का सम्यक् ज्ञान है, तथा बाह्य भोगों से विरक्ति भी। [ज्ञानी] अपने इसी शरीर में सदा उस आत्मा को देखता है जो ज्योतिर्मय है। जो लोग सभी दोषों और त्रुटियों से मुक्त हो गये हैं वे ज्ञानी ही देखते हैं। [५]

---

१ छान्दोग्योपनिषद् ७.२५.२

सत्यमेव जयति, नानृतं;
सत्येन पन्था विततो देवयानः,
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ।।६।।

अनु०–सत्य ही विजयी होता है, मिथ्या नहीं; सत्य से देवयान[1] मार्ग का विस्तार हुआ है, जिस के द्वारा आप्तकाम ऋषिगण उस पद को प्राप्त करते हैं जहाँ वह सत्य का परम निधान [वर्तमान] है। (६)

सि० अ०—जो सत्यनिष्ठ है वही विजय प्राप्त करता है, जो सत्यनिष्ठ नहीं है वह विजय नहीं प्राप्त करता। जिस मार्ग से उस तक पहुँचते हैं वह मार्ग भी सत्य है। जिन ज्ञानियों की कोई कामना शेष नहीं रह गयी है वे इसी सन्मार्ग से उस तक पहुँचते हैं। वहाँ सत्य का भाण्डार है और वहाँ सत्य भरा हुआ है। [६]

बृहच् च तद्, दिव्यमचिन्त्यरूपं,
सूक्ष्माच् च तत् सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात् सुदूरे, तदिहान्तिके च,
पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ।।७।।

अनु०–वह महान्, दिव्य, अचिन्त्यरूप, और सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर भासमान होता है। [वह] दूर से भी दूर और इस शरीर में अत्यन्त समीप भी है। [वह] चेतन प्राणियों में इस शरीर के भीतर उन की बुद्धिरूप गुहा में निहित है। (७)

सि० अ०—वह महान् है और अपने ही प्रकाश से प्रकाशित। उस का स्वरूप विचार में नहीं आता। चूँकि वह सूक्ष्मों से भी सूक्ष्मतर है, अतः वह दृष्टि में नहीं आता। वह दूर से भी दूरतर है और समीप से समीप से भी समीपतर। अज्ञानियों के लिए वह दूर से भी दूर है और ज्ञानियों के लिए वह समीप से भी समीपतर। वह अपनी हृदयगुहा में दिखायी देता है। [७]

न चक्षुषा गृह्यते, नापि वाचा,
नान्यैर् देवैस्, तपसा, कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्,
ततस्, तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ।।८।।

---

१ 'देवयान' और 'पितृयान' के सम्बन्ध में प्रश्नोपनिषद् १.१० की टिप्पणी द्रष्टव्य है।

आनुणर्न्नीलॅङ्किलादित्यनुमॅन्नॅ
मानिच्चु पार्क्कुमतिनिल्ल संशयम् । १०७
अत्र महत्त्वमिनिक्कुळ्ळतेतुमे
सिद्धमल्लाञ्ञिन्नुणर्त्तियकारणं १०८
निन्नॅयुपेक्षिक्कयॅन्नतुं वन्निति-
नॅन्नुटॅ सत्यलोपं वरुमायतिल् । १०९
ऍन्नतु केट्टु करञ्ञुतुटङ्ङिनाळ्
तन्वंगि दुःखिच्चु पिन्नॅयुं चॉल्लिनाळ् ११०
ऍन्नोटिवण्णमरुळ्चॅय्यरुतय्यो
निन्नुटॅ धर्म्मलोपं वरुमॅन्नतो- १११
र्त्तॉन्नऱियातॅ ञान् चॅय्तोरपराध-
मॅन्नॅक्कुऱिच्चु पॉऱुत्तुकॉळ्ळेणमे । ११२
निर्म्मलतापसन्मार् निनवॅन्तॅन्नु
चॅम्मे तिरिच्चऱिवान् पणियुण्टल्लो । ११३
दुःखिच्चिवण्णं परञ्ञु करयुन्न
मैक्कण्णियोटरुळ्चॅय्तु मुनीन्द्रनुम् । ११४
सत्यविरोधं वरुत्तुकयिल्ल ञा-
नुत्तमयाय नी खेदिक्कयुं वेण्टा । ११५
भर्त्तृवाक्यं केट्टु भद्रयां पत्नियुं
चित्ततापत्तोटु चॉल्लिनाळ् पिन्नॅयुम् । ११६
वह्नियिल् वीऴॅन्नु मातावुतान् पण्टु
पन्नगन्मारॅश्शपिच्चॉरु कारणं ११७

मैं अगर न जग जाता तो सूर्य मेरे लिये अवश्य प्रतीक्षा करता! मेरा इतना महत्त्व है यह बात तुम्हारे लिए बिलकुल सिद्ध नहीं थी, इसलिए तुमने जगाया। अब तुम्हें त्याग करने की स्थिति आ गयी। इसमें मेरा सत्य लोप हो जाने का डर है।" यह सुनकर तन्वङ्गी रोने लगी और दुःखित हो कर फिर बोली—"मुझ से आप को इस प्रकार बोलना नहीं चाहिए। यह सोंचकर कि आप का धर्मलोप हो जायगा मेंने बिना कुछ समझे यह अपराध किया है। आपको क्षमा करना चाहिए निर्मल तापसों के क्या विचार हैं यह ठीक समझना कठिन काम तो है ही"। दुःख से इस प्रकार रोती हुई प्रिया से मुनीन्द्र ने कहा—"मैं अपने सत्य के विरुद्ध कुछ नहीं करूँगा। तुम उत्तम स्त्री हो, खेद न करो"। पति की

अन्वयनाशमॉळिप्पतिन्नायॉरु
नन्दननुण्टामिनिक्कॅन्नु कलिपच्चु । ११८
पन्नगेन्द्रन् मम सोदरन् वासुकि-
यॅन्नॅ भवानु नल्कीटिनान् निर्णयम् । ११९
मुन्ने विरिञ्चनियोगवुमुण्टुपोल्
ऍन्नुटॅ गर्भं मुतिर्न्नतुमिल्लल्लो । १२०
इत्यादिकळ् परञ्ञेटं करयुन्न
मुग्धांगियिल् कृपयोटु चॉल्लीटिनान् । १२१
भर्तृपरायणे भद्रे करयाय्क
भक्तिविश्वासङ्ङळ् कण्टु तॅळिञ्ञु ञान् । १२२
अद्भुतनाकियोरर्भकन् निन्नुटॅ
गर्भंगनायुण्टवन् नल्लनेरंकॉ-१२३
ण्टुद्भविच्चीटुं गुणवानवन्तन्नॅ
सर्प्पान्वयमॉक्क रक्षिक्कयुं चॅय्युम् । १२४
दुर्भगनल्लवनॉट्टुमवनोळं
सद्भावमिल्ल मट्टार्क्कुंमरिक नी । १२५
त्वल्भ्रातृमुख्यनां सद्भोगिनायकन्
निर्भाग्यनल्लॅटो वासुकिवीरनुम् । १२६
नित्यं तपस्सिने कांक्षयुळ्ळू मम
पुत्रनुण्टायाल् मति गृहस्थाश्रमम् । १२७

बात सुन कर साध्वी पत्नी ने चित्त के ताप के साथ फिर कहा—"बहुत दिन पहले माता ने सर्पों को शाप दिया था कि वे आग में गिरकर मर-जायँ। इसके फलस्वरूप होने वाले वंशनाश से बचाने वाला एक पुत्र मुझमें पैदा हो जाय, इस बुद्धि से मेरे भाई वासुकि ने निःसन्देह मुझे आपको विवाह में देदिया। अभी मेरा गर्भ पक्का भी नहीं हुआ"। १०७-१२०
इस प्रकार विलाप करती और रोती हुई अपनी मुग्धांगी (प्रियतमा) के प्रति कृपा के साथ मुनि ने कहा—"हे पतिव्रते ! हे भद्रे ! रोओ मत ! तुम्हारी भक्ति और विश्वास देखकर मैं प्रसन्न हूँ। एक अद्भुत पुत्र तुम्हारे गर्भ में वर्तमान है और वह यथा समय उत्पन्न होगा। वह गुणवान् होगा और वह सर्पवंश की रक्षा भी करेगा। वह लेशमात्र भी दुर्भग नहीं होगा और उसकी जैसी सद्भावना और किसी की न होगी, जान लो। तुम्हारा मुख्य भाई, सद्भोगियों (अच्छे सर्पों) का नायक

निन्नॅक्कुरिच्चु विरक्तनायिट्टल्ल
धन्ये समस्तविषयविरक्तन् ञान् । १२८
सत्यविरोधं वरुत्तुकयुं वेण्टा
सत्यमत्रे ञान् पऱञ्ञतरिञ्ञालुम् । १२९
निङ्ङ्ळुटॅ कुलत्तिन्नु सौख्यं वरुं
मंगलनाय ममात्मजनालिनि । १३०
ऍन्निवचॅन्नु नी वासुकियोटु चॉल्-
कॅन्नरुळ्चॅय्तॅळुन्नळ्ळी मुनीन्द्रनुम् । १३१
वासुकियॅक्कण्टवळिवयुं चॉलि
वासवुं चॅय्तितु नागपुरं तन्निल् १३२
नल्ल मुहूर्त्ते पिऱन्नु कुमारनु-
मॅल्लावरुं तॅळिञ्ञारहिवीररुम् । १३३
अस्ति गर्भे सुतनॅन्नु तपोधनन्
सत्यमाय् चॉन्नतु कारणमाकयाल् १३४
अस्तिकनॅन्नु पेरिट्टितु वासुकि ।
नित्यमोदेन वळर्न्नितु बालनु १३५
वेदवेदांगवेदान्तादिविद्यकळ्
चेतोहरन् बालनध्ययनं चॅय्तान् । १३६
आचार्यनाकुं च्यवनमुनीन्द्रनो-
टाशीर्व्वादं वाङ्ङि दक्षिणयुं चॅय्तान् १३७

वीर वासुकि भाग्यहीन नहीं है। मेरी तो केवल सदा तप करने की इच्छा है, अतएव पुत्रजन्म के बाद मुझे गृहस्थाश्रम नहीं चाहिए। यह न समझो कि मैं तुमसे विरक्त हो गया हूँ। सच तो यह है कि मैं सभी विषयों से विरक्त हूँ। मेरे सत्य-वचन का विरोध पैदा करने की आवश्यकता नहीं है। जान लो कि जो कुछ मैंने कहा वह सत्य सिद्ध होगा। मेरे मंगलमय पुत्र के द्वारा तुम लोगों के कुल का सौख्य ही होगा। तुम जाकर ये सब बातें वासुकि से कहो''। इतना कहकर मुनीन्द्र चले गये। १२१-१३१ तदनन्तर पत्नी ने सभी बातें बासुकि से कह दीं और वह नागों के नगर में निवास करने लगी। एक शुभ मुहूर्त में कुमार का जन्म हुआ और सभी सर्पों के वीर प्रसन्न हुए। तपोधन ने कहा था—''गर्भ में पुत्र है (अस्ति)'' और वह सत्य भी निकला। इस लिए वासुकि ने उसका नाम 'अस्तिक' रखा। वह सदा ही प्रमोद के

नानारत्नङ्ङळ् धनधान्यराशिकळ्
भोगीश्वराज्ञया नल्किनानावोळम् । १३८
दिव्यनायीटुं च्यवनन् प्रसादिच्चु
सर्व्वज्ञनाय् वरिकॅन्नु चॉल्लीटिनान् १३९
सूतनीवण्णं पऱञ्ञोरनन्तरं
सादरं चोदिच्चु पिन्नॅयुं शौनकन् । १४०
हालाहलज्ज्वालया मुनिशापत्ताल्
कालवशगतनाय तातन्कथा- १४१
मूलमऱिञ्ञवाऱॅङ्ङनॅ चॉल्लु नी
बालकनाय जनमेजयनृपन् १४२
चॉन्नानतुं सूतनॅङ्किलतुं केळ्प्पिन्
मुन्नमुदङ्कन् पऱञ्ञॉट्टऱिञ्ञितु १४३
पिन्नॅयुं मन्नवन् तन्नमात्यन्माऱॅ
मुन्निल् वरुत्ति मुळुवन् विचारिच्चान् । १४४
ऍन्नुटॅ तातनुण्टाय वृत्तान्तङ्ङ
ळॅन्नोटु निङ्ङळ् मुळुवन् पऱयणम् । १४५
ऍन्नतु केट्टु ताॅळुतवर् चॉल्लिनार् ।
निन्नुटॅ तातनुटॅ गुणं चॉल्लुवान् १४६

साथ बढ़ता गया। वह मनोहर बालक वेद, वेदाङ्ग, वेदान्त आदि विद्याएँ पढ़ता रहा। अपने आचार्य मुनीन्द्र च्यवन के आशीर्वाद पाकर उनको दक्षिणा दी। भोगीश्वर (वासुकि) की आज्ञा से उनको अनेक प्रकार के रत्न, धन और धान्य की पूंजी दी गयी। दिव्य च्यवनजी प्रसन्न हुए और उन्होंने आशीर्वाद दिया कि तुम सर्वज्ञ हो जाओ। सूतजी के इस प्रकार कहने के अनन्तर शौनक ने फिर सादर पूँछा—१३२-१४० "मुनि-शाप के कारण हालाहल विष की ज्वाला से काल (मृत्यु) के वश में आये अपने पिता की कथा का मूल, बालक राजा जनमेजय को कैसे मालूम हुआ, यह सुनाइए"। तब सूत ने वह भी सुनाया। इसलिए सुन लीजिए। पहले उदङ्क के कहने से कुछ ज्ञात हो गया था। फिर भी राजा ने अपने अमात्यों को अपने सामने बुलाकर सारा वृत्तान्त पूँछा। (उन्होंने कहा—) मेरे पिता के जो जो वृत्तान्त हुए वे सभी मुझको बतला दीजिए। यह सुनकर उन्होंने प्रणाम करके कहा—१४१-१४६

पन्नगनाथननन्तनुमावत-
ल्लन्यरायुळ्ळवरॅङ्ङनॅ चॉल्लुन्नु । १४७
इन्द्रादिदिक्पालकन्मारुटॅ गुण-
मॉन्नॉॡियातॅ नृपनुण्टुनिर्ण्णयम् । १४८
श्रीरामनु समनॅन्ने पऱयावू
पारितु पालनं चॅय्ततोर्क्कुं विधौ । १४९
विष्णुराताख्यनां विश्वंभरावरन्
विष्णुभक्ताग्रगण्योत्तमन् सत्तमन् १५०
जिष्णुजनन्दनपुत्रन् परीक्षित्तु
कृष्णलीलानन्दसिन्धुमग्नात्मकन् १५१
विश्वंभरापति विश्वंभरप्रियन्
विश्वरक्षाकरन् विश्वनाथोपमन् १५२
वर्ण्णाश्रमश्रेणिधर्म्मस्थितिचॅय्तु
नन्नाय् परिपालनं चॅय्तु भूतलम् । १५३
वन्न कलियॅयुमाट्टिक्कळञ्ञितु
पिन्नॅयारुळ्ळतु मटॉरु वैरिकळ् । १५४
एकातपत्रयाय् वन्नु धरणियु-
मेकान्तसौख्येन निन्नितु लक्ष्मियुम् १५५

पन्नगों (सर्पों) का नाथ अनन्त भी आपके पिता के गुणों का वर्णन नहीं कर सकता औरों की तो बात ही क्या है ? इन्द्र आदि दिक्पालों के सभी गुण आपके पिता भूपति (राजा परीक्षित्) में हैं, इसमें सन्देह नहीं । उनके भूमि की परिपालनविधि (पालन करने के प्रकार) को देखकर अवश्य कहना पड़ता है कि वे श्रीराम के समान थे । उनका नाम था विष्णु-रात; वे पृथिवी में सब से उत्तम थे, और विष्णुभक्तों के श्रेष्ठों में श्रेष्ठ, सत्तम, अर्जुन के पुत्र के पुत्र थे । उनकी आत्मा कृष्णलीलानन्द-सागर में मग्न थी, वे विश्वंभरा (पृथिवी) के पति, विश्वंभर (भगवान्) के प्रिय थे, वे सभी की रक्षा करनेवाले थे, विश्वनाथ के तुल्य थे । ऐसे राजा परीक्षित् ने वर्णाश्रम धर्म का स्थापन करके पृथिवी का अच्छी तरह से परिपालन किया । अभ्यागत कलि को भगा दिया । इससे बढ़ कर और कौन शत्रु हो सकता है । समस्त धरणी (पृथिवी) एक छत्रच्छाया में आ गयी और राज्यलक्ष्मी बड़े सुख के साथ रही । १४७-१५५ राजा

चॅन्नु वयस्सुमरुपतुमक्कालं
मन्नवन् पळ्ळिवेट्टय्क्कॅळुन्नळ्ळिनान् १५६
अन्नु पैदाहङ्ङळ्कॉण्टु विकल्पवुं
वन्नितु बुद्धिक्कतुनिमित्तं तदा १५७
शृंगिशापंकॉण्टु तक्षकनतन्नुटॅ
संगति नीक्करुतातॅ चमञ्ञितु । १५८
पिन्नॅयुण्टायवृत्तङ्ङळो भवा-
नॉन्नॉळियातॅयरिञ्ञल्लो मेवुन्नु । १५९
ऍन्नितमात्यन्मार् चॉन्नतु केट्टॉरु
मन्नवन् पन्नगसत्रमारंभिच्चान् । १६०
चॉन्नानुदङ्कनतिन्नुपायङ्ङळुं
वन्नु मुनिकळुमामॅन्नु चॉल्लिनार् १६१
शिल्पियॅक्कॉण्टन्नु शाल निर्म्मिप्पति-
न्नप्पोळवनॉरु लक्षणं चॉल्लिनान् । १६२
अग्निसमाननां ब्राह्मणनालॉरु
विघ्नमितिन्नु वरुमॅन्नु निर्णयम् । १६३
वास्तुसंस्कारक्रियान्तरे तोन्निच्चु
वास्तवलक्षणमॅन्नवन् चॉल्कयाल् १६४
द्वास्थन्मार् गोपुरत्तिङ्कल् निन्नीटुक
पार्त्तारुमिङ्ङु वराय्वतिनॅन्नतुं १६५

की आयु साठ बरस की हो गयी और वे शिकार खेलने निकले। उस दिन भूँख और प्यास के कारण उनकी बुद्धि में विकल्प पैदा हुआ। अतएव शृंगी का शाप लगा और तक्षक की अनिवार्य घटना पैदा हो गयी। उसके बाद जो कुछ हुआ वह सब जानते हुए ही आप विराज रहे हैं। अमात्यों का यह कहना सुनकर राजा ने सर्पसत्र प्रारम्भ किया। उदङ्क ने उसके अनुष्ठान के उपाय बतला दिये। मुनिजन पधारे और उन्होंने भी स्वीकार किया। शिल्पियों के द्वारा यज्ञशाला का निर्माण कराना था। उस समय (उदङ्क ने) एक लक्षण बतला दिया—"एक अग्नितुल्य ब्राह्मण के द्वारा इस यज्ञ का विघ्न होने वाला है, इसमें संदेह नहीं।" यज्ञशाला के निर्माण की क्रिया के अवसर पर उन्होंने सुझाव दिया था कि यही लक्षण है। इसलिए राजा जनमेजय ने आज्ञा दी कि द्वारपाल गोपुर पर खड़े हो जायँ ताकि कोई इधर न आ जाय। तदनन्तर

धात्रीशनां जनमेजयन् कलिपच्चॉ-
रास्थकलर्न्नु यागं तुटङ्ङीटिनान् । १६६
संभारमॉक्कवे संभरिच्चीटिनार्
संभ्रमत्तोटुममात्यजनङ्ङळु १६७
धात्रीसुरन्मारुपकरणङ्ङळु
तीर्त्तु घोषिच्चु तुटङ्ङि महाक्रतु । १६८
नीलांशुकधरन्मारां द्विजेन्द्रन्मार्
कोलाहलेन वेदङ्ङळुमोतिनार् । १६९
नालां श्रुतिक्रिय चॅय्तुतुटङ्ङिनार् ।
भूलोकवुं निरञ्ञु पुकतन्निले । १७०
होता मुनितिलकन् चण्डभार्ग्गवन्
चेतसि चिन्तिच्चु चॉन्नतॉरुक्कुवान् १७१
पुक्कार् पराशरहोत्रादिकळॅल्ला-
मॉक्कॅप्परिकर्म्मवुं नटत्तीटिनार् । १७२
हस्तिहस्तोपमन्माराय सर्प्पङ्ङ-
ळत्र मन्त्रप्रयोगाज्याहुतिकॉण्टु १७३
कत्तियॅळुन्नॉरु पावकज्ज्वालया
दग्धगात्रात्मना गर्त्तान्तरङ्ङळि- १७४
लॅङ्ङुमिरिक्करुताञ्ञु तळर्न्नवर्
तङ्ङुळिल् चुट्टॅरिञ्ञु पिरिञ्ञु व- १७५
न्नग्नियिल् वीणु पॉरिञ्ञु तुटङ्ङिना-
रग्नियुमेटं तॅळिञ्ञु विळङ्ङिनान् । १७६

उन्होंने श्रद्धा के साथ याग प्रारंभ किया । अमात्यों ने सारी यज्ञसामग्री बड़े संभर (आतुरता) के साथ इकट्ठा की । और ब्राह्मणों ने समस्त उपकरण तैयार करके महायज्ञ की घोषणा की । और ब्राह्मण लोग नीलांशुक (नीला वस्त्र) धारण करके गंभीर ध्वनि से वेदपाठ करने लगे, और चौथे वेद (अथर्ववेद) की क्रिया भी करने लगे । सारा भूलोक धुएँ से भर गया । होता मुनिश्रेष्ठ चण्ड भार्गव कही गई वस्तुओं को तैयार करने के लिए सोंचने लगे । १५६-१७१ पराशर, होता आदि प्रवेश करके अलंकरण आदि तैयारियाँ करने लगे । इतने मन्त्रों के प्रयोग से और आज्याहुति से जल उठी आग की ज्वाला से दग्ध होकर हाथी के हाथ के समान मोटे-मोटे सर्प अपने बिलों में रहना असंभव हो जाने के कारण वहाँ से निकल-निकल

अञ्चुमेऴुं मून्तुं मस्तकमुळ्ळव-
रञ्चुमारुं तम्मिळॉन्निच्चु वीऴ्कयुं १७७
वाताशनकुलहाहानिनादवुं
वातसखिहेतिहूहूनिनादवुं १७८
भूदेवसत्तमवेदनिनादवुं-
मोदनतेमनास्वादनिनादवुं १७९
दिव्यगव्यद्रव्यहव्यदाहक्रिया
सव्यचाराग्निकीलाग्रधूमाभयुं १८०
सर्व्वलोकं परन्नोरु सौरभ्यवुं
गर्व्वदर्व्वीकरन्मार्विलापङ्ङळुं १८१
पार्त्थिवेन्द्रन्मार् चतुरंगसेनयो-
टार्त्तु वरुम्पोळ् नटत्तुन्न घोषवुं १८२
भोक्तुकामन्मार् भुजिच्चु नृपेन्द्रनॅ
वाऴ्त्ति स्तुतिच्चु पाटीटुन्न घोषवुं १८३
वाद्यघोषङ्ङळुं नानाजनस्तोम-
चोद्योत्तरंकॉण्टु वाय्कुं निनादवुं १८४
घोरघोरं केट्टु वारान्निधिकळुं
पारमिळकि मरिञ्ञु कलङ्ङुन्नु । १८५
धाराधरङ्ङळुमॅन्तॅन्नरियाञ्ञु
धीरतरमिटिवॅट्टि मुऴुङ्ङुन्नु । १८६

कर, परेशान होकर, एक दूसरे से जुड़कर कुण्डली बनकर फिर अलग होकर अग्नि में गिरकर भुनने लगे। और अग्नि भी अत्यन्त तीव्र जलने लगा। १७२-१७६ पांच, सात या तीन सिर वाले सर्प पांच पांच छः छः एक साथ आग में गिरे। सर्पकुलों का हाहानिनाद, वातसखि (अग्नि) की ज्वालाओं का हूहूनिनाद, ब्राह्मणोत्तमों की वेदध्वनि, अन्न और व्यंजन के आस्वादन का निनाद, दिव्य गव्यद्रव्य से बने हव्य की दाहक्रिया, वामचार अग्नि के ज्वालाग्र से निकले धूम की शोभा, समस्त लोक में फैला हुआ सुगन्ध, गर्ववाले सर्पों के विलाप, अपनी चतुरंग सेना के साथ आनेवाले भूपालों का घोष, भोजनेच्छुकों के भोजन के बाद राजा की स्तुति के लिए किये गानों का घोष, वाद्यों का घोष, नानाजनसमूह के प्रश्न और उत्तरों के कारण मुखों का निनाद, ये सब घोर-घोर नाद सुन कर समुद्र उलट गये। और मेघ भी कुछ न समझकर अपने गंभीर

लोहार मुषल वीर घन-घन नाड़े ❋ श्रीरामेर यत बाण ताहे ठेकि पड़े
मुषल फिराये वीर मारिवारे आसे ❋ ब्रह्म-अस्त्र रघुनाथ जुड़िलेन त्रासे
बिना-अस्त्रे युद्ध, येन मदमत्त हाती ❋ कारे किल-चड़ मारे, कारे मारे लाथि
भूमे पड़े नीलवीर हइया कातर ❋ मुषलेर घाये मारे अनेक वानर
मुषल करिया हाते छुटे उभराय ❋ पलाय वानरगण, पिछु नाहि चाय १६८
डाक दिया कहिलेन ठाकुर लक्ष्मण ❋ एक उपदेश शुन यत कपिगण
पागल ह'येछे बेटा रक्तेर दुर्गन्धे ❋ जन कत वानर उठह ओर स्कन्धे
भर ना सहिबे बेटा, पड़िबे चापने ❋ भूमिते पाड़िया मार पापिष्ठ दुर्जने
लक्ष्मणेर वाक्येते साहसे करि भर ❋ स्कन्धे उठे बड़ बड़ अनेक वानर
कुम्भकर्ण-स्कन्धे चड़ि वीरगण नाचे ❋ बादुड़ झुलिछे येन तेंतुलेर गाछे
शरभ गवाक्ष गय से गन्धमादन ❋ महेन्द्र देवेन्द्र नल उठे सप्तजन
सप्तजन चड़िलेक कुम्भकर्ण-स्कन्धे ❋ केशे धरि टाने केह, घाड़े नख बिन्धे
सातवीर लाफ दिया घाड़े गिया चड़े ❋ दुइ हाते कुम्भकर्ण वानरे आछाड़े
आछाड़े गवाक्ष-वीर हाराय संवित् ❋ भूमिते पड़िल, मुखे उठिल शोणित
शरभ गवाक्ष गय ओ गन्धमादन ❋ आछाड़ेर घाये सबे हैल अचेतन
देखिया अंगद हनूमाने लागे डर ❋ उठिते उठिते घाड़े उठि दिल रड़ १६९

लोहे का मूसल लेकर वीर उसको बराबर घुमाता रहा और श्रीराम के फेंके हुए सारे बाण उससे टकरा कर नीचे गिर गये। मूसल घुमाते हुए जब वह मारने के लिए लपका तो त्रास में आकर रघुनाथ ने धनुष पर ब्रह्म-अस्त्र चढ़ाया। मदमत्त हाथी सा वह बिना अस्त्र के लड़ता रहा, मुक्का, घूँसा और लात मारते हुए वह वीर आगे बढ़ा। वीर नील घायल होकर जमीन पर गिर गया। मूसल के प्रहार से बहुत से बन्दरों को उसने मार डाला। हाथ में मूसल लेकर वह तेजी से घुमाने लगा और बन्दर सिर पर पैर रखकर भागने लगे॥ १६८॥

तब लक्ष्मण ने कपियों को सम्बोधित करते हुए कहा, सुनो, यह रक्त की दुर्गन्ध से पगला गया है। कुछ बन्दर इसके कंधे पर चढ़ जाओ, भार न संभाल सकने से यह गिर पड़ेगा तो इसको जमीन पर गिरा कर मारने लगना। लक्ष्मण के कहने से बन्दरों में साहस आया और कई बड़े-बड़े बन्दर कुम्भकर्ण के कन्धों पर चढ़कर नाचने लगे। लगा कि इमली के वृक्ष पर चमगादड़ लटक रहे हैं। शरभ, गवाक्ष, गय, गन्धमादन, महेन्द्र, देवेन्द्र और नल—ये सातों कुम्भकर्ण के कन्धों पर सवार हो गये। कोई तो उसके बाल पकड़ कर खींचने लगा तो कोई नाखून से गर्दन खरोंचने लगा। दोनों हाथों से इन बन्दरों को पकड़ कर कुम्भकर्ण ने पटक दिया। पटकनी खाकर वीर गवाक्ष ने होश गँवा दिया, उसके मुँह से खून बहने लगा। शरभ, गय और गन्धमादन भी पटकनी खाकर बेहोश हो गये। यह देखकर अंगद और हनुमान

कुम्भकर्णे पाड़िते नारिल कोनजने ✽ आरवार अस्त्र राम जुड़िलेन गुणे
ब्रह्म-अस्त्र छाड़िलेन पूरिया सन्धान ✽ कुम्भकर्णेर काटिलेन डान-हातखान
हातखान पड़े, जेन पर्व्वत-शिखर ✽ हातेर चापने पड़े अनेक वानर
वामहाते शालगाछ उपाड़िया आने ✽ हाते गाछ करि धाय श्रीरामेर पाने
ऐषिक-बाणेते राम पूरिया सन्धान ✽ सेइबाणे काटिलेन बाम-हातखान
दुइहात काटागेल, तबु नाहि टुटे ✽ श्री रामेर गिलिवारे द्रुतिगति छुटे
इन्द्र-अस्त्र रघुनाथ करिला सन्धान ✽ एकबाणे काटिलेन पद दुइखान
हस्त गेल, पद गेल, तबु नाहि डरे ✽ गड़ागड़ि दिया जाय रामे गिलिवारे
दन्ते धरि तुलि निल लोहार मुषल ✽ मुषलेर घाये मारे वानरमण्डल
मुषल काटिते राम जुड़िलेन बाण ✽ नय बाणे मुषल करिला खान-खान
काटा गेल मुषल, शमता नाहि ताते ✽ गड़ागड़ि दिया जाय श्रीरामे गिलिते
येमन आइसे राहु चन्द्रे ग्रासिवारे ✽ कुम्भकर्ण तेमते श्रीरामे गिलिवारे
कुम्भकर्ण-मुख बहि पड़िछे शोणित ✽ बाणे मुख भेदिल, देखाय विपरीत
एतेक दुर्गति हैल, तबु नाहि मरे ✽ आरबार ब्रह्म-अस्त्र मारिलेन तारे

को भी डर लगने लगा और उन्होंने कन्धों पर चढ़ने का विचार छोड़ दिया ॥ १६६ ॥

कुम्भकर्ण को जब कोई भी काबू में नहीं कर सका तो राम ने फिर प्रत्यंचा पर बाण रखा। निशाना साधकर उन्होंने ब्रह्मास्त्र फेंका और कुम्भकर्ण का दाहिना हाथ काट डाला। हाथ क्या गिरा मानों एक पहाड़ आ गिरा और उसके नीचे बहुत सारे बन्दर दब गये। अब उसने बाएँ हाथ से एक शालवृक्ष उखाड़ा और उसको लेकर राम की ओर लपका। राम ने निशाना साधकर ऐषिक बाण फेंका और उस बाण से उसका बायाँ हाथ काट डाला। दोनों हाथों के कट जाने से भी वह निस्तेज नहीं हुआ, श्रीराम को लीलने के लिए वह द्रुत गति से दौड़ने लगा। रघुनाथ ने इन्द्र-अस्त्र फेंका और एक ही बाण से उसके दोनों पैर काट डाले। हाथ कट गये, पैर कट गये, फिर भी उसको कोई डर नहीं, जमीन पर लुढ़कता हुआ वह, राम को निगलने के लिए चला। दाँतों से उसने मूसल पकड़ लिया और उसके प्रहार से बन्दरों को मारने लगा। राम ने नौ बाण चलाकर मूसल को खंड-खंड कर डाला। मूसल के खंड-खंड हो जाने पर भी वह शान्त नहीं हुआ और भूमि पर लुढ़कता हुआ वह राम को निगलने चला, मानो राहु चन्द्र को निगलने जा रहा है। कुम्भकर्ण के मुँह से रक्त की धारा बहने लगी। बाणों से मुँह छिद गया और वह अद्भुत सा दीखने लगा। इतनी दुर्दशा के उपरान्त भी उसके प्राण नहीं गये। तब राम ने दुबारा ब्रह्म-अस्त्र फेंका। चारों ओर उजियाला करता

यमदण्ड-सम बाण, येमन बिजुलि ❋ छुटिल रामेर बाण चौदिक उजलि
ब्रह्म-अस्त्र बाण आर नाहिक अन्यथा ❋ सेइ बाणे कुम्भकर्णेर काटिलेन माथा
काटामुण्ड हनूमान सापटिया तोले ❋ टेने फेले दिल ल'ये समुद्रेर जले
सागरेर जलजन्तु करे तोलपाड़ ❋ मध्य-सागरेते येन पड़िल पाहाड़
दशलक्ष राक्षसेते कुम्भकर्ण पड़े ❋ कानन भांगिल येन प्रलयेर झड़े
देवगण सुखी हैल रामेर विक्रमे ❋ स्वर्ग हैते पुरन्दर पूजेन श्रीरामे
कपिगण बले, राम, करिला निस्तार ❋ आर यत वीर आछे, मो-सवार भार
ना देखि एमन वीर ए तिन भुवने ❋ जुझिवार काज थाक्, भंग दरशने
अकाले जागिया कुम्भकर्णेर विनाश ❋ श्रीराम-चरण स्मरि गाय कृत्तिवास ७०

कुम्भकर्णेर मृत्युसंवाद-श्रवणे रावणेर विलाप

रणे भंग दिया यत निशाचरगण ❋ रणस्थली छाड़ि कैल लंका-प्रवेशन
हेथा कुम्भकर्णे पाठाइया राम-रणे ❋ दशानन करितेछे चिन्ता मने-मने
समरे गियाछे आजि कुम्भकर्ण भाइ ❋ एखनि जिनिबे रण, किछु शंका नाइ
जयवार्त्ता दिबे दूत जेकाले आसिया ❋ तुषिब ताहारे आमि बहुधन दिया
नगरे करिया नाना मंगल-आचार ❋ भ्रातारे आनिते निजे हब आगुसार

वह बाण बिजली के समान चला और उसने कुम्भकर्ण का सिर काट कर रख दिया। हनुमान ने उस कटे मुंड को दोनों हाथों से समेट कर समुद्र के जल में फेंक दिया। समुद्र के मध्य मानों कोई पहाड़ जा गिरा—सारे जल-जन्तुओं में कुहराम मच गया। दस लाख राक्षसों के समान कुम्भकर्ण गिरा, मानों प्रलय की आँधी में कोई वन भूमिसात् हो गया। राम के पराक्रम से देवता सुखी हुए। स्वर्ग से पुरन्दर ने राम की पूजा की। कपियों ने कहा, राम तुमने आज हम सबको बचा लिया। बाकी जितने वीर हैं उनसे निबटने का काम हमारा है। ऐसा वीर तो त्रिभुवन में नहीं देखा था जिससे लड़ना तो दूर की बात, देखने से ही भगदड़ मच जाती थी। इस प्रकार असमय नींद से जागकर कुम्भकर्ण का विनाश हुआ ॥ ७० ॥

कुम्भकर्ण की मृत्यु के समाचार से रावण का विलाप

सारे निशाचर रणक्षेत्र से भागकर लंका में प्रवेश कर गये। कुम्भकर्ण को राम के साथ लड़ने भेजकर दशानन मन ही मन सोचने लगा था, आज मेरा कुम्भकर्ण भाई रण में गया है, वह तुरन्त ही युद्ध में विजय प्राप्त कर लौटेगा, कोई शंका नहीं है। दूत जब विजय-वार्ता लेकर आएगा तो उसको पर्याप्त धन देकर तुष्ट करूँगा। नगर भर में विभिन्न मंगल-अनुष्ठान करूँगा। भाई की अगवानी करने खुद ही चला जाऊँगा और उसके झुक कर प्रणाम करने से पूर्व ही मैं उसको अपने अंक में बाँध लूँगा। उसके युद्ध की सज्जा

ना करिते ना करिते प्रणाम आमारे ※ अग्रेइ ये आमि कोले करिब ताहारे
रणवेश घुचाइया दिव्यवेश करि ※ दूभाइ बसिब एक आसन-उपरि
वन्धुजन सकले करिया आनयन ※ नानामत उत्सव करिब आचरण
एत भावि किछुकाल परे दशानन ※ उत्कण्ठित ह'ये पुनः करये चिन्तन
भ्राता मोर गियाछे, हइल बहुक्षण ※ एखनो ना कैल केन दूत आगमन
बुझिते ना पारि किछु रणेर विषय ※ हइल कि ना हइल शत्रु-पराजय
बुझि शत्रुजय नाहि हइया थाकिबे ※ जय हैले केन मोर हृदय काँपिबे
एइरूप करिते करिते मनोरथे ※ शुनिते पाइल कोलाहल व्योमपथे
ताहा शुनि हइया विस्मययुक्त-मन ※ उद्विग्न हइया करे विविध चिन्तन
एकि एकि आजि देव-मुनि-यक्षगण ※ करितेछे आकाशेते जय उच्चारण
बाँचिया थाकिते मोर कुम्भकर्ण भाइ ※ उहादेर मुखे जय-शब्द सुनि नाइ
अतएव बड़ शंका हय मोर चिते ※ ना जानि ह'तेछे किवा संग्राम स्थलीते ७१
एइरूप चिन्ता करे राजा दशानन ※ हेनकाले भग्नदूत कैल आगमन
तारे देखि जिज्ञासे रावण सशङ्कित ※ कह रे कह रे रण-मंगल त्वरित
भीतमन ह'ये दूत कहिते ना पारे ※ आरबार राजा तारे कहे कहिवारे
तबे कान्दि भग्नदूत कहे सभास्थल ※ कि कहिब महाराज, रणेर कुशल
तोमार अनुज गिया समर-भितर ※ बधिलेन बहुतर भल्लुक-वानर
परे राम-बाणेते से त्यजिया पराण ※ स्वर्गपुरे कुम्भकर्ण करिला प्रयाण

उतारकर दिव्यवेश पहना कर हम दोनों भाई एक ही आसन पर बैठेंगे। सारे इष्ट-मित्रों को बुलवाकर उत्सव का आयोजन करूँगा। इतना सोचने के कुछ देर के उपरान्त दशानन फिर उत्कण्ठा से चिन्ता करने लगा, मेरा भाई काफी देर हुए गया है, अभी तक दूत क्यों नहीं आया। समझ में नहीं आता कि रण में क्या हुआ—शत्रु पराजित हुआ भी या नहीं। शायद शत्रु विजित नहीं हुआ, नहीं तो विजय होने पर मेरा हृदय क्यों काँपता? इस प्रकार चिन्तन करते समय उसने व्योमपथ से कोलाहल होते हुए सुना। सुनकर उसे विस्मय हुआ और वह तरह-तरह की चिन्ताएँ करने लगा। यह कैसी बात है कि देव, मुनि और यक्ष आकाश में जय-ध्वनि कर रहे हैं। मेरे भाई कुम्भकर्ण के जीवित रहते उनके मुँह से कभी जय-ध्वनि सुनने को नहीं मिली, इसलिए मेरे मन में शंका बढ़ रही है—न जाने युद्धक्षेत्र में क्या हो गया है ॥ ७१ ॥

इस प्रकार राजा दशानन चिन्ता कर रहे थे कि भग्नदूत आ पहुँचा। रावण ने सशंकित हो कर कहा, तुरन्त रण का सन्देश सुनाओ। भयभीत दूत कुछ बोल न सका। फिर राजा ने उससे कहा तो वह रोते हुए बोला, क्या बताऊँ महाराज, तुम्हारे अनुज ने रणक्षेत्र में जाकर असंख्य भालू और बन्दरों का विनाश किया लेकिन बाद में राम के वाण से प्राण त्याग कर स्वर्ग प्रयाण

जेइमात्र एइ कथा चरेते कहिल ❋ मूर्च्छा हेतु दशानन भूतले पड़िल
ताहा देखि महापार्श्व आर महोदर ❋ उठाइया बसाइल आसन-उपर
कुम्भकर्ण-मृत्युवार्त्ता करिया श्रवण ❋ क्रन्दन करये यत लङ्कावासी जन७२
मुहूर्त्तेक परे राजा चेतन पाइया ❋ विलाप करये शोके कातर हइया
भाइ नहि, आमि रे चण्डाल सहोदर ❋ काँचा घुमे जागाये पाठाइ यमघर
आजि हैल शून्याकार निद्रार चउरि ❋ वीरशून्या हइल कनक-लंकापुरी
आजि हैते राज्य मोर हइल विफल ❋ कुम्भकर्ण भाइ, तुमि छिले महाबल
चन्द्र सूर्य वायु यम देव-पुरन्दर ❋ महासुखे निद्रा जाबे, घुचे गेल डर
कोथा गेले भाइ मोर, आइस सत्वर ❋ दुइ भाइ मिलि गिया करिब समर
डानिहस्त गेल मोर एतदिन परे ❋ लङ्कापुरे क्रन्दन उठिल घरे-घरे
विभीषण भाइ मोरे दिया गेल शाप ❋ धार्मिकेर शापे पाइ एत मनस्ताप७३
हाय हाय कि हइल, क्रूर विधि कि करिल, प्राणाधिक भाइ निल हरि।
कि करिब कोथा जाब, कोथा गेले तोरे पाब, ता'—बिने किरूपे प्राण धरि॥
ओरे प्राणाधिक भ्राता, मोरे छाड़ि गेलि कोथा, देखिते ना पाइ आर तोरे।
धिक् धिक् प्राणे मोर, शुनिया मरण तोर, एखनो ना छाड़े ए-शरीरे॥

कर गये। ज्योंही दूत ने यह वार्त्ता सुनाई दशानन मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। यह देखकर महापार्श्व और महोदर ने उनको आसन पर बिठाया। कुम्भकर्ण की मृत्यु का समाचार पाकर सारे लंका-निवासी क्रन्दन करने लगे॥ ७२॥

क्षणभर के बाद राजा सचेतन होकर शोक से कातर हो विलाप करने लगा। अरे मैं भाई नहीं चंडाल हूँ जो नींद से जगाकर अपने सहोदर को यम के घर भेज दिया। आज से निद्रा-भवन सूना हो गया और लंकपुरी वीर से सूनी हो गई। आज से मेरा राज्य करना विफल हो गया। ऐ मेरे कुम्भकर्ण भाई, तुम महाबली थे, आज से चन्द्र, सूर्य, वायु, यम और इन्द्र सुख से सोयेंगे क्योंकि अब उनको कोई डर न रहा। मेरे भाई, तुम कहाँ चले गये? झट आन मिलो, दोनों मिलकर अब युद्ध करेंगे। इतने दिनों बाद मेरा दाहिना हाथ चला गया। इस प्रकार लंका के घर-घर में क्रन्दन-रव उठा। धार्मिक भाई विभीषण के अभिशाप से आज मुझको इतना कष्ट मिल रहा है॥ ७३॥

हाय हाय, यह क्या हो गया? क्रूर विधाता ने क्या किया? मेरे प्राणों से भी प्रिय भाई को मुझसे छीन लिया। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कहाँ जाने से वह मिल जायगा? उसके बिना मैं कैसे जीवित रहूँ? ओ मेरे प्राणप्यारे भाई, मुझको छोड़कर तुम कहाँ चले गये? मेरे प्राणों को धिक्कार है कि तेरी मृत्यु का समाचार सुनकर भी उसने इस शरीर को त्यागा नहीं। तुम मुझसे

कहि गेले तुमि मोरे, मारि आसि राघवेरे, आपनि बसिया थाक सुखे।
ताहा ना करिते पारि, निजे गेले यमपुरी, फेलिले आमारे घोर दुःखे ॥
जिनिले असुर-सुर, गन्धर्व-भुजंग-पुर, यक्ष गुह्य सिद्ध विद्याधर।
जय करि ए-संसारे, क्षुद्र मनुष्येर करे, प्राण हाराइले भ्रातृवर ॥
ये तोमार शरीरेते, नाहि पारि प्रवेशिते, वज्र भूमि तले प'ड़ेछिल।
से तुमि रामेर शरे, बिद्ध हैले कि प्रकारे, आमार कपाले एकि छिल ॥
आर आमि कि प्रकारे, जिनिब से पुरन्दरे, शमन-वरुण-दैत्यगणे।
उपस्थित शत्रुजने, किरूपे बधिब रणे, लंका-रक्षा करिब केमने ॥
ओरे ओरे भ्रातृवर तोमा-बिने मोरे डर, ना करिबे आर कोनजन।
अपर कि कब आर, यावत् वानर छार, तारा कैल सशंकित-मन ॥
ना मरिते ना मरिते, आगे ऐ आकाशेते, कोलाहल करे देवगण।
बुझि वा इहार परे, उपहास करे मोरे, करतालि दिया सर्व्वजन ॥
मारीच कहिला हित, सातिशय समुचित, कहिलेक भ्राता विभीषण।
तुमिह कहिले पथ्य, सब कथा अति तथ्य, किछु नाहि करिनु श्रवण ॥
धार्मिक विशुद्ध-मन, सेइ भ्राता विभीषण, करिलाम तार अपमान।
सेइ पापे बुझि मोरे, नर-वानरेर करे, पाइते हइल अपमान ॥

कह गये, मैं राघव को मार कर आता हूँ, तुम आनन्द से बैठो। सो तो तुम कर नहीं सके और खुद ही यमपुरी चले गये, मुझको घोर क्लेश में छोड़ गये। हे मेरे योग्य भ्राता, तुमने सुर-असुर, गन्धर्व, भुजंग, यक्ष, गुह्य, सिद्ध, विद्याधर आदि को पराजित कर सारे संसार पर विजय प्राप्त की, और आज क्षुद्र मनुष्य के हाथों प्राण गवाँया। तुम वह हो जिसके शरीर में प्रवेश करने में असमर्थ वज्र टकरा पर भूमि पर गिर पड़ा था और आज वही तुम राम के बाण से कैसे आहत हो गये? मेरे भाग्य में यह क्या लिखा था? फिर मैं किस तरह से पुरन्दर, यम, वरुण तथा दैत्यों पर विजय प्राप्त कर सकूँगा? उपस्थित शत्रुओं का रण में किस प्रकार वध कर सकूँगा और लंका की रक्षा किस प्रकार कर सकूँगा? अरे! मेरे भाई, तुम्हारे न होने से, मुझसे अब कोई भी डरेगा नहीं। दूसरों की क्या कहूँ, इन क्षुद्र वानरों तक ने मेरे मन को सशंकित कर रखा है। तुम्हारे मरते न मरते ही आकाश में देवतागण कोलाहल करने लग गये। शायद इसके बाद वे सब के सब तालियाँ बजा कर मेरी हँसी उड़ायेंगे। मारीच ने मेरे हित में कहा था और भाई विभीषण ने अत्यन्त समुचित बात कही थी, तुमने भी हितकारी और सच्ची बातें बताईं, किन्तु मैंने किसी की एक बात भी न सुनी। विशुद्ध-चित्त और धार्मिक भाई विभीषण का मैंने अपमान किया। कदाचित् उसी पाप के कारण मुझको नर एवं वानरों के हाथ अपमानित होना पड़ा। मेरे भाई,

तुमि भ्राता यदि गेले, कि फल ऐश्वर्य-बले, कि कार्य सीताय आर प्राणे।
कि फल समर-जये, कि फल बान्धव-चये, प्राण दिब रघुपति-बाणे ।। ७४

नरान्तक, देवान्तक, महोदर, त्रिशिरा एवं महापाशेर युद्ध ओ मृत्यु

एइरूपे क्रन्दन करये दशानन ❊ अश्रुजले अभिशिक्त हइल वदन
पिताय कातर देखि पुत्रे जन्मे दुःख ❊ त्रिशिरा विक्रम करे रावण-सम्मुख
करिला तपस्या पिता, हइते अमर ❊ अमर हइते ब्रह्मा नाहि दिला बर
अमर हइल विभीषण निजगुणे ❊ ब्रह्मार कृपाय सेइ सर्व-शास्त्र जाने
शास्त्र-अनुरूप खुड़ा कहिलेक हित ❊ धार्मिक-चरित्र जिनि विचारे पण्डित
त्रिभुवन जिनि पिता, तोमार बाखान ❊ देवता-गन्धर्व्व-आदि नाहि धरे टान
ज्येष्ठ भाइ कुबेर धनेर अधिकारी ❊ तारे जिनि पुष्परथ निले लङ्कापुरी
मय-दानव महाराज सर्वलोक-माझे ❊ कन्यादान दिया से तोमारे देख पूजे
वासुकिर विषदाहे त्रिभुवन पुड़े ❊ तव शब्द पाइले पलाय उभरड़े
इन्द्र-यम-वरुणेर करिले वितथा ❊ मनुष्य-बेटारे जिना कत बड़ कथा

यदि तुम ही चले गये तो मुझको इस धन-सम्पदा की कौन सी आवश्यकता रही, अपने प्राण और सीता से भी मुझे क्या काम रहा, युद्ध-विजय से भी क्या फल होगा और इष्ट-मित्रों के ध्वंस से ही क्या फल निकलेगा ? इससे अच्छा है कि मैं रघुपति के बाणों से प्राण दे दूँ ।। ७४ ।।

नरान्तक, देवान्तक, महोदर, त्रिशिरा और महापाश का युद्ध और मृत्यु

दशानन इस प्रकार क्रन्दन करने लगा और उसका मुँह आँसुओं से भीग गया। पिता को दुखी देखकर उसका पुत्र त्रिशिरा भी दुखी हुआ और रावण के सम्मुख अपना पराक्रम प्रकट करने लगा। (उसने कहा) हे पिता, अमर बनने के लिए तपस्या की, लेकिन ब्रह्मा ने अमरत्व का वरदान नहीं दिया। विभीषण अपने गुणों के कारण अमर हो गये और ब्रह्मा की कृपा से सर्व-शास्त्र पारंगत हो गये। चाचा जी ने शास्त्र के अनुरूप कार्य किया, वे विद्वान और धार्मिक चरित्र के हैं। त्रिभुवन पर विजय प्राप्त कर आपको ख्याति मिली, देवता-गन्धर्व आदि आपका सामना न कर सके। आपके ज्येष्ठ-भ्राता कुबेर धन के अधिकारी हैं, उन पर विजय प्राप्त कर आप पुष्पक-विमान लंकापुरी ले आये। सारे लोकों में प्रख्यात महाराजा मयदानव ने अपनी कन्या दान कर आपकी पूजा की। वासुकी के विषदाह से त्रिभुवन भस्म हो जाता है किन्तु आपकी आहट पाते ही वह भाग जाता है। जिन्होंने इन्द्र-यम-वरुण की दुर्दशा कर दी उनके लिए मनुष्य पर विजय प्राप्त करना कौन सी बड़ी बात है। आज के युद्ध का सारा भार मुझपर है, मैं विभिन्न अस्त्रों से युद्ध करूँगा। गरुड़ के मुँह में जिस प्रकार सर्प जलकर खाक हो जाता

नाना-अस्त्र संग्रामे करिब अवतार ❋ आजिकार यत युद्ध, से भार आमार
गरुड़ेर मुखे येन दग्ध हय साप ❋ श्रीराम-लक्ष्मणे मारि घुचाब सन्ताप७५
त्रिशिरा विक्रम करे, राजा हरषित ❋ आर तिन भाइ तार रोषे आचम्बित
देवान्तक नरान्तक अतिकाय-वीर ❋ संग्रामे जाइते चाहे, नाहि हय स्थिर
चारिजन महाबल चिरकाल जाने ❋ चारिजने ऐक्य हैले त्रिभुवन जिने
राजार प्रसाद यत पाय चारिजन ❋ सुगन्धि-कुसुम-माल्य कस्तूरी-चन्दन
वीर-धटी परे केह नामे गंगाजल ❋ रत्न-विनिर्मित परे कर्णेते कुण्डल
परिल सोनार शाना, रत्नेर टोपर ❋ माणिक्येर हार साजे गलार उपर
नाना-रत्न-अलङ्कार परिल शरीरे ❋ कनक-कंकण बाला परे दुइ करे
चारि बेटा परिलेक चारि राजार धन ❋ रावणेर चारि बेटा कामिनी-मोहन
महापाश-वीर आर भाइ महोदर ❋ छयजन यात्रा करे संग्राम-भितर७६
छयवीर यात्रा करे संग्रामे प्रवीण ❋ विदाय लइल करि पितृ-प्रदक्षिण
नीलवर्ण हस्ती एल नीलमेघ-ज्योति ❋ ऐरावत-वंशे तार ह'येछे उत्पत्ति
बड़इ प्रबल सेइ मदमत्त हाती ❋ ताहाते चड़िल महोदर योद्धपति
उच्चैःश्रवा अश्व येन पवनेर गति ❋ सेइ अश्वे चड़े देवान्तक महामति

है उसी प्रकार मैं श्रीराम-लक्ष्मण को मारकर आपका सारा सन्ताप दूर करूँगा ॥ ७५ ॥

जब त्रिशिरा इस प्रकार अपना पराक्रम प्रकट करने लगा तो राजा हर्ष-मग्न हुआ। उसके तीन भाई देवान्तक, नरान्तक और अतिकाय रोष से अधीर होकर संग्राम में जाने के लिए आग्रह करने लगे। चारों भाई महाबली हैं, ये चारों जब एकत्र हो जायें तो त्रिभुवन जीत सकते हैं, यह सभी लोग जानते हैं। चारों को राजा का प्रसाद—सुगंन्धित पुष्पों की माला और कस्तूरी-चन्दन प्राप्त हुआ। उन्होंने गंगाजल के समान शुभ्र वीर परिधान धारण किया। रत्नों से बने कुंडल पहन लिये। रत्न-निर्मित मुकुट और सोने का कवच धारण किया। गले में माणिक्य का हार पहन लिया। शरीर पर विभिन्न रत्नालंकार और—हाथों में सोने के कंगन—इस प्रकार चारों बेटों ने चार राजाओं की सम्पदा के तुल्य आभूषण पहन लिये। रावण के चारों बेटे कामिनीमोहन हैं। उनके साथ रावण के दो वीर भाई महापाश, महोदर भी साथ हो लिये। इस प्रकार संग्राम लड़ने के लिये ये छह वीर चल पड़े ॥ ७६ ॥

संग्राम में निपुण छह वीरों ने रावण की प्रदक्षिणा कर विदा ली। नीले वर्ण का नील-मेघ-ज्योति नामक हाथी आया जिसका जन्म ऐरावत के वंश में हुआ था। वह मदमत्त हाथी बड़ा ही प्रबल था। उसपर समरपति महोदर ने सवारी की। पवन की गति वाले उच्चैःश्रवा अश्व पर महामति देवान्तक

शासक को सदैव ऐसे कुशल बुद्धिमानों की सलाह और सहायता को सुलभ करना चाहिए जिनके कौशल से वर्त्तमान विपत्तियों से रक्षा और आनेवाली विपत्तियों को जानकर उनका निवारण होगा ।। २ ।।

अरियवट्रु ळॅल्लाम् अरिदे पॅरियारैप्
पेणित् तमराक् कॉळल् ।। ३ ।।

श्रेष्ठ जनों का आदर करके उन्हें बनाओ अपना अंग ।
निधियों में सर्वोपरि निधि[1] है ऐसे सुहृदों का सत्संग ।। ३ ।।

महान् पुरुषों का सदैव सम्मान करो और उनकी दुर्लभ मित्रता को सुलभ बनाये रखो । यह शासक के लिए दुर्लभ निधि [अथवा सर्वोपरि ख़ज़ाना] है ।। ३ ।।

तम्मिर् पॅरियार् तमरा ऑळुहुदल्
वन्मैयुळ् ॲल्लाम् तलै ।। ४ ।।

सकल शक्तियों में सर्वोपरि शक्ति नृपति की यही महान्—
रक्खे सचिव समीप सदा अपने से अधिक कुशल गुणवान् ।। ४ ।।

अपने से अधिक योग्य व्यक्तियों को अपने समीप सुहृद बना कर रखना—यह शासकों के लिए प्रमुख और सब से बड़ा बल है ।। ४ ।।

शूऴ्वार्कण् णाह ऑऴुहलान् मन्नवन्
शूऴ्वारैच् चूऴ्न्दु कॉळल् ।। ५ ।।

मंत्री नहीं ! नयन हैं नृप के ! चुनो परख कर सचिव प्रबुद्ध[2]।
स्वच्छ सूझ से शासन का लख पावें 'क्या है शुद्ध-अशुद्ध ?' ।। ५ ।।

मंत्री और सचिव शासक से नेत्र होते हैं । इसलिए [अपने नेत्रों को स्वच्छ रखने के समान] शासक को परखे हुए सुपात्र और बुद्धिमान् सचिवों का चुनाव करना चाहिए ।। ५ ।।

तक्कार् इनत्तनायत् तानॊऴुह वल्लानैच्
चॅट्रार् शॅयक्किडन्द तिल् ।। ६ ।।

सच्चे हितू सुयोग्य सचिव से समलंकृत[3] है जो नरनाथ,
शत्रु-समूह न कर सकते कुछ भी अनिष्ट[4] उस नृप के साथ ।। ६ ।।

यदि शासक के समीप [राज्य के प्रति] निष्ठावान् और सुपात्र सचिव-सलाहकार हैं, तो उसके शत्रु बिसी प्रकार की क्षति उसको नहीं पहुँचा सकते ।। ६ ।।

---

१ ख़ज़ाना २ परम बुद्धिमान् ३ सुशोभित ४ हानि, बुराई ।

इडिक्कुम् तुणैयारै आळ्वारै यारे
कॆडुक्कुम् तहैमै यवर् ? ।। ७ ।।

निर्भय सचिव ! दोष दरसाते, नृप को देते मार्ग-प्रकाश,
शत्रु न उपजा[1] जिससे सम्भव ऐसे नृप का कभी विनाश ।। ७ ।।

सशक्त से सशक्त शत्रु भी शासक का कुछ नहीं बिगाड़ सकते, यदि उसके सुयोग्य मंत्रिगण उसको समय पर [सत्परामर्श देते और उसकी कमियों की ओर ध्यान दिलाते हुए] सचेत करते रहें ।। ७ ।।

इडिप्पारै इल्लाद एमरा मन्नन्
कॆडुप्पारि लानुम् कॆडुम् ।। ८ ।।

सच्चे और खुले आलोचक[2] सचिव न जिस नरपति के पास,
विना शत्रु, वह स्वयं शत्रु है अपना स्वयं बुलाता ह्रास[3] ।। ८ ।।

जिस शासक के साथ स्पष्ट आलोचक [और शासक के आचार पर] अंकुश रखने वाले मित्र अथवा सचिव नहीं हैं, वह राजा स्वयं अपना विनाश करता है; उसके विनाश के लिए किसी घातक शत्रु की ज़रूरत नहीं ।। ८ ।।

मुदलिलार्क्कु ऊदियम् इल्लै; मदलैयाम्
शार्बिलार्क्कु इल्लै निलै ।। ९ ।।

पूंजी जिनके पास नहीं, जिस भाँति व्यर्थ उनका व्यापार,
सुहृद सखाओं विना अरक्षित-डगमग उसी भाँति संसार ।। ९ ।।

[व्यापार में] पूंजी के विना लाभ संभव नहीं है। उसी प्रकार सच्चे मित्रों और सलाहकारों के विना सुरक्षा और स्थायित्व कभी संभव नहीं ।। ९ ।।

पल्लार् पहैकॊळ्ळलिऱ् पत्तडुत्त तीमैत्ते
नल्लार् तॊडर्है विडल् ।। १० ।।

सुहृद प्रवीणों[4] की, मित्रों की यदि सलाह पर दिया न कान,
इस क्षति को अगणित रिपु की क्षति से समझो दसगुना प्रमान ।। १० ।।

असंख्य शत्रुओं के विरोध और विद्वेष की अपेक्षा सुयोग्य मित्रों और उनकी सलाह की अवहेलना दसगुनी बुरी और हानिकर है ।। १० ।।

---

१ पैदा हुआ २ गुणदोष मुँह पर कह देने वाले ३ पराभव, विनाश ४ बुद्धिमान् मित्रों ।

अदिहारम् (अध्याय) ४६

शिट्रिनम् शेरामै (कुसंग से बचना)

शिट्रिनम् अन्जुम् पेरुमै; शिरुमैदान्
शुट्रमाच् चूळ्न्दु विडुम् ॥ १ ॥

सदा कुसंगति से भय खाता, यही सत्पुरुष की पहचान।
उसी भाँति अधमों की संगति में दुर्जन को प्रीति महान् ॥ १ ॥

सत्पुरुष सदैव कुसंगति से बचते, अधमों की संगति से भय खाते [और दूर रहते] हैं। किन्तु अधम जन दुर्जनों का ही संग करने में प्रसन्न रहते हैं ॥ १ ॥

निलत्तियल्बाल् नीर्तिरिन्दु अट्राहुम् मान्दर्क्कु
इनत्तियल्ब ताहुम् अरिवु ॥ २ ॥

'जैसी मिट्टी वैसा जल है', जैसे हम करते अनुमान।
साथी-संगी देख व्यक्ति के भले-बुरे की है पहचान ॥ २ ॥

ज़मीन के अनुसार वहाँ का जल स्वाद और रंग बदलता है। उसी प्रकार मनुष्य की प्रकृति भी अपने संगियों के अनुसार [अच्छी और बुरी] बन जाती है; अथवा जिस प्रकार मिट्टी से जल की परख होती है उसी प्रकार मनुष्य की परख उसके संगी-साथियों को देखकर होती है ॥२॥

मनत्तानाम् मान्दर्क् कुणर्च्चि; इनत्तानाम्
इन्नान् अेनप्पडुम् शॊल् ॥ ३ ॥

मन है प्रबल, बुद्धि लोगों की चलती है मन के अनुसार।
है चरित्र पर छाप[1] साथ-संगति की निश्चय उसी प्रकार ॥ ३ ॥

लोगों की बुद्धि उनकी मनोवृत्ति के अनुसार होती है। लेकिन उनका चरित्र उनके साथी-संगियों से प्रभावित होता है ॥ ३ ॥

मनत्तु ळदुपोलक् काट्टि ऑरुवर्कु
इनत्तुळ ताहुम् अरिवु ॥ ४ ॥

मन से बुद्धि उपजती है, यद्यपि ऐसा होता आभास,
सत्य किन्तु है—'मित्रों के अनुरूप बुद्धि का सदा विकास' ॥ ४ ॥

ऐसा मालूम होता है कि बुद्धि का मन से उदय होता है। किन्तु सही बात यह है कि वह संग के प्रभाव से [अच्छी या बुरी] उत्पन्न होती है ॥ ४ ॥

---

१ प्रभाव।

मऩन्तूय्मै शॆय्विऩै तूय्मै इरण्डुम्
इऩन्तूय्मै तूवा वरुम् ॥ ५ ॥

'संगति' का प्रभाव सर्वोपरि, यदि संगति मिल गई पवित्र,
निश्चय मन को पावन[1] करती, पुष्कल[1] करती सदा चरित्र ॥ ५ ॥

मन की पवित्रता और आचरण की पवित्रता—दोंनो ही निस्सन्देह अच्छी पवित्र संगति पाकर अपने आप उत्पन्न हो जाती हैं ॥ ५ ॥

मऩन्तूयार्क् कॆच्चम् नऩ्ऱाहुम्; इऩन्तूयार्क्कु
इल्लै नऩ्ऱाहा विऩै ॥ ६ ॥

मन पवित्र होने पर निश्चय सुलभ विविध सुन्दर परिणाम,
किन्तु सदाशय[2] की संगति से होते सफल कठिन सब काम ॥ ६ ॥

पवित्र मन वालों की कीर्ति सदैव स्थायी रहती है। किन्तु पवित्र मन वालों के सत्संग से तो संसार की प्रत्येक सफलता सुलभ है ! ॥ ६ ॥

मऩनलम् मन्ऩुयिर्क्कु आक्कम्; इऩनलम्
ऎल्लाप् पुहऴुम् तरुम् ॥ ७ ॥

साधु वृत्ति, निर्मल मन जिनका, उनको जग में लाभ अनन्त,
किन्तु साथ में यश अनन्त यदि संगति में हैं सज्जन-सन्त ॥ ७ ॥

मन की साधुता और उत्तमता से बड़े से बड़े लाभ प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु साधु और श्रेष्ठ जनों के सत्संग से [लाभ के साथ-साथ] सब प्रकार के गौरव और कीर्ति भी सुलभ होती है ॥ ७ ॥

मऩनलम् नऩ्गुडैयार् आयिऩुम् शाऩ्ऱोर्क्कु
इऩनलम् एमाप् पुडैत्तु ॥ ८ ॥

शुद्धिबुद्ध[3] जन के होते हैं मन विशाल सर्वथा पवित्र।
अमित शक्ति भी मिल जाती यदि संगति में हैं सज्जन मित्र ॥ ८ ॥

बुद्धिमान् मनुष्यों के मन सहज ही विशाल और पवित्र होते हैं, किन्तु सत्पुरुषों के सत्संग से और भी अधिक शक्ति प्राप्त होती है ॥ ८ ॥

मऩनलत्तिऩ् आहुम् मरुमै; मट्ऱह्दुम्
इऩनलत्तिऩ् एमाप् पुडैत्तु ॥ ९ ॥

---

१ पवित्र, निर्मल २ अच्छे मन वाले ३ श्रेष्ठ बुद्धि वाले।

मन पावन[1] उनका भविष्य है निश्चय विविध सुखों की खान।
इन सुक्खों को श्रेष्ठ जनों की संगति करती शक्ति प्रदान ॥ ९ ॥

मन की पवित्रता और विशालता निस्सन्देह भविष्य को आनन्दमय बनाती है। किन्तु श्रेष्ठ जनों का सत्संग उसको अधिक सुरक्षित और सुखमय बनाता है ॥ ९ ॥

नल्लिनत्ति नूङ्गुम् तुणैयिल्लै; तीयिनत्तिन्
अल्लर् पडुप्पदूउम् इल् ॥ १० ॥

अतुल सहायक सत्संगति है इससे बढ़कर सखा न अन्य।
सब पापों का मूल कुसंगति, सब दुःखों का स्रोत अनन्य ॥ १० ॥

सत्संग से—साधु पुरुष की मित्रता से बढ़ कर दूसरी सहायता नहीं; कुसंग से—खल पुरुषों के साथ से बढ़ कर दूसरी महामारी नहीं ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ४७

तॆरिन्दु शॆयल्वहै (सोच-समझ कर कार्य करना)

अऴिवदूउम् आवदूउम् आहि वऴिपयक्कुम्
ऊदियमुम् शूऴ्न्दु शॆयल् ॥ १ ॥

हानि-लाभ का लेखा-जोखा, फिर उनका अन्तिम परिणाम—
पूरा इन पर कर विचार, तब शुरू करो तुम कोई काम ॥ १ ॥

किसी काम में हाथ देने से पूर्व भली प्रकार सोच लो और तौल लो कि क्या हानि होगी, क्या उपलब्धि होगी; और अन्ततः [लाभ अथवा हानि में] क्या परिणाम होगा [बिना इस पर विचार किये काम का आरंभ करना जोखिम है] ॥ १ ॥

तॆरिन्द इनत्तॊडु तेर्न्दॆण्णिच् चॆय्वार्क्कु
अरुम्बॊरुळ् यादॊन्रुम् इल् ॥ २ ॥

निपुण सचिवगण की सलाह, फिर उस पर करना स्वयं विचार।
समझ-सोच कर किसी काम में नहीं हानि के फिर आसार[2] ॥ २ ॥

सुयोग्य सलाहकारों से सलाह लेने के बाद अपने विवेक से निर्णय लेकर काम करने वाले के लिए [संसार का] कोई भी कार्य कठिन नहीं है ॥ २ ॥

---

१ पवित्र   २ लक्षण, गुंजाइश।

आक्कम् करुदि मुदलिळक्कुम् शॆय्विनै
ऊक्कार् अऱिवुडै यार् ।। ३ ।।

महज्ञ[1] लाभ की मृगतृष्णा[2] में पूंजी से भी धोना हाथ—
बुद्धिमान् से कभी न संभव, खेले इस जोखिम के साथ ।। ३ ।।

लाभ की आशा मात्र पर अपनी मौजूदा पूंजी को भी गवाँ देना—जोखिम के ऐसे काम में हाथ डालना बुद्धिमानों का काम नहीं ।। ३ ।।

तॆळिवु इलदनैत् तॊडङ्गार् इळिवॆन्नुम्
एदप्पा डञ्जु पवर् ।। ४ ।।

नहीं, विफल होने पर जिनको, सहन लोकनिन्दा अपमान,
सोचे-समझे बिना न सहसा किसी काम पर उनका ध्यान ।। ४ ।।

जिन शासकों को अपनी विफलताओं पर लोकनिन्दा और उपहास का भय है, वे विना आगा-पीछा विचारे किसी काम को सहसा शुरू नहीं करते ।। ४ ।।

वहैयऱच् चूळा तॆळुदल् पहैवरैप्
पात्तिप् पडुप्पदु ओराऱु ।। ५ ।।

असमय-समय, बलाबल जाने विना शत्रु पर यदि अभियान[3],
स्वयं समर्पित कर निज लक्ष्मी[4] रिपु को करना है श्रीमान्[5] ।। ५ ।।

[असंतुलित] बल-अबल अथवा मौका-बेमौका का विना विचार किये, व्यवस्था-हीन ढंग पर शत्रु के ऊपर पिल पड़ना, मानो शत्रु को स्वयं अपने ही राज्य में [बुला कर राज्य सौंप देना और] पुष्ट करना है ।। ५ ।।

शॆय्दक्क अल्ल शॆयक्कॆडुम्; शॆय्दक्क
शॆय्यामै यानुम् कॆडुम् ।। ६ ।।

अकरणीय[6] अनुचित कर्मों के करने पर है सदा विनाश ।
किन्तु उचित करणीय[7] कर्म के तजने पर भी निश्चय नाश ।। ६ ।।

अपुपयुक्त कार्यों को कर उठाना घातक है । उसी प्रकार उपयुक्त कार्यों का न करना और विमुख होना भी घातक है ।। ६ ।।

---

१ केवल २ झूठी आशा ३ चढ़ाई ४ अपना सुख, वैभव, राज्य आदि
५ सम्पन्न ६ त्याज्य, कभी न करने योग्य ७ लाज़िमी, धर्मयुक्त ।

ऎण्णित् तुणिह करुमम्; तुणिन्दपिन्
ऎण्णुवम् ऎन्ब तिळुक्कु ।। ७ ।।

आगा-पीछा सोच-समझ कर लेना उचित हाथ में काम।
अधबिच[1] में विवेक की आशा, है दुस्साहस, है बे-काम ।। ७ ।।

किसी काम में हाथ डालने से पहले खूब सोच-विचार लो, सारा आगा-पीछा तौल लो, और तब काम का साहस करो। काम में फस कर दुस्साहस कर लेने के बाद, सोच-विचार व्यर्थ है, नाशकारी है ।। ७ ।।

आट्रिन् वरुन्दा वरुत्तम् पलर्निन्रु
पोट्रिनुम् पॊत्तुप् पडुम् ।। ८ ।।

बिन योजना, विचार, तरीके विना शुरू यदि कोई काम,
निश्चय विफल, सहायक यद्यपि नाना सुभट-वीर-बलधाम ।। ८ ।।

कितनी ही शक्ति का सहारा क्यों न हो, किन्तु विना योजना और विना निश्चित रूपरेखा बनाये, मन्सूबा मात्र पर जो कार्य शुरू कर दिये जाते हैं वे निश्चय विफल होते हैं ।। ८ ।।

नन्राट्रल् उळ्ळुम् तवरुण्डु अवरवर्
पण्बरिन् दाट्राक् कडै ।। ९ ।।

है सन्देह सफलता में उसकी, वह भले हुआ सत्कर्म।
क्योंकि कर्म के गुण-स्वभाव का करते-समय न जाना मर्म ।। ९ ।।

स्वभाव के विरुद्ध किये गये अच्छे काम का भी परिणाम बुरा हो सकता है। [हर काम का एक अपना ढंग होता है। उसके अनुसार न करने पर भी विफलता होगी, भले ही वह काम कितना ही अच्छा क्यों न हो।] ।। ९ ।।

ऎळ्ळाद ऎण्णिच् चॆयल्वेण्डुम्; तम्मॊडु
कॊळ्ळाद कॊळ्ळादु उलहु ।। १० ।।

काम अशोभन[2] करने पर होता है सदा लोक-उपहास।
'लोक सराहे'[3]—यह विचार रख कर समुचित है सकल प्रयास[4] ।। १० ।।

शासक [अथवा व्यक्ति] के लिए जो कार्य अशोभन हैं, लोक [अर्थात् विद्वानों का समुदाय] उनकी निन्दा करता है। इसलिए कार्य

---

१ काम शुरू होजाने के बाद संकट के समय २ जो काम जिसके लिए अयोग्य हो ३ लोक प्रशंसा करे ४ कार्य।

करने से पहले ख़ूब सोच-समझ लो कि वह अशोभन और उपहासास्पद तो नहीं हैं ॥ ॥

अदिहारम् (अध्याय) ४८

वलि अऱिदल् (बल का ज्ञान)

विऩैवलियुम् तऩ्वलियुम् माट्ऱाऩ् वलियुम्
तुणैवलियुम् तूक्किच् चॆयल् ॥ १ ॥

शत्रु, मित्र, संघर्ष, और निज बल का प्रथम विचार-विमर्श—
भली भाँति कर लेने पर ही उचित छेड़ना है संघर्ष ॥ १ ॥

युद्ध अथवा संघर्ष में फसने से पहले उस संघर्ष की शक्ति (कठिनाइयाँ), और अपना, अपने सहयोगियों-मित्रों तथा अपने विपक्षी शत्रु के बल को पूरी तरह तौल लेना ज़रूरी है ॥ १ ॥

ऒल्व दऱिव दऱिन्ददऩ् कण्तङ्गिच्
चॆल्वार्क्कुच् चॆल्लाददु इल् ॥ २ ॥

निज पौरुष का, और साधनों का जिनको है पूरा ज्ञान,
नहीं असाध्य कर्म कोई भी जिस पर दृढ़ ऐसे मतिमान् ॥ २ ॥

जो स्थिति का पूरा पता रखते हैं, [जो जानते हैं कि उनकी सामर्थ्य से क्या-कहाँ तक हो सकता है], और उपायों तथा साधनों का ज्ञान रखते हैं, और तब दृढ़ता से कार्य पर जमते हैं, ऐसे व्यक्तियों के लिए कोई [कठिन से कठिन] काम असाध्य नहीं ॥ २ ॥

उडैत्तम् वलियऱियार् ऊक्कत्तिऩ् ऊक्कि
इडैक्कण् मुरिन्दार् पलर् ॥ ३ ॥

निज बल का न विचार, शत्रु पर कर देते सहसा अभियान[1]!
युद्ध दूर! पहले ही ऐसों का मिट जाता नाम-निशान ॥ ३ ॥

अनेक जन [अथवा शासक] अपने बल की सीमा को न जान कर उतावलेपन और शेख़ी में विरोधी पर धावा बोल देते हैं। ऐसे लोग दूर न जाकर मंझधार ही में डूब जाते हैं ॥ ३ ॥

---

१ चढ़ाई।

पर बमिस्दाक़ॅ ला यद्रिकाँ कुल्लहू ला यतरिक्कुल्लहू जो कुछ कहा है, ख़ूब कहा है। उम्मीद क़वी है कि आप इस शायर नौख़ेज़ नाज़ुक ख़याल (जो कि अभी से जौदत और ज़कावत उसकी शुहरए शुअराए माज़ी को शरमा देती है) की मेहनत की दाद और लियाक़त का सिला देंगे। अगरचें इब्तिदाएँ उम्र में आप को इस फ़नें शरीफ़ यानी शायरी की तरफ़ चन्दाँ तवज्जुः न थी मगर अब मैंने सुना है कि आपने हर इल्म व फ़न में महारतें ताम और इस्तेंदादें माला कलाम हासिल की है। पस इल्में शेर में भी अलाहाज़ा। लिहाज़ा आप इस क़सीदः से बहुत ख़ुश होंगे। यह वाज़ह राए आली हो कि तश्बीब इस क़सीदः की बिलकुल हस्बें मुहावरः हाल नेचुरल मज़ाक़ की है और मज़ाक़ॅ नेचरी आपको बित्तबा बल्कि बिल्फ़ितरन पसन्द है। यूँ तो क़सीदः अज़ सरतापा मुरस्सः है, ख़ुसूसन बाग़ का सीन बहुत ही उम्दः खिंच गया है, गोया पूरा फ़ोटो है। घोड़े की तारीफ़ में भी एक शेर क़ियामत का कहा है। अफ़सोस है कि इस क़सीदः ग़रा की पूरी नक़ल हमको दस्तयाब न हुई वर्ना ज़रूर ही शाया करते।

जवाब

मीर साहब ! दोस्तों को भूल जाना एक ख़ुल्क़ॅ मज़मूम है। मैं अपने दोस्तों को, अगर वह फ़िलवाक़ै मेरे दोस्त हों, बिहम्दिल्लाह कभी नहीं भूलता। अपने शागिर्द की मद्ह्-सराई में जिस क़द्र शेरी मुबालग़ों को आपने दख़ल दिया है उसकी दाद मैं उस हालत में दे सकता था कि मैं भी मिस्ल आपके शायर होता। और उससे ज़ियादः आपके शागिर्दें रशीद के क़सीदः की क़द्रशिनासी से महरूम हूँ। 'वल् हम्दु-लिल्लाह अला ज़ालिक।' आपको ख़ुद याद होगा कि अवाएलें उम्र में आपको शेरगोई पर मलामत किया करता था। मेरा ख़याल अब तक वही है। मुझको हर ऐसे काम से जिसमें कोई दीनी व दुनयवी मुन्फ़अ़त न हो, नफ़रतें कुल्ली है और ऐसे फ़नें रज़ील से जिसमें कोई मज़र्रत हो, ख़ुसूसन ख़ुल्क़ी मज़र्रत, बदर्जए औला नफ़रत होना चाहिए। अगर आपको कुछ भी अगले दोस्तों का ख़याल है तो सिर्फ़ उतनी फ़िक्र इस मुक़द्दमे के समझने के लिए काफ़ी है जितनी एक मिसरा लगाने के लिए करना पड़ती है, या उससे भी कम कि मेरी मद्ह् में क़सीदः कहने से ज़ियादः कोई अम्र लग़ो व फ़िज़ूल दुनिया में हो सकता है।

मेरे आपके बीच मिज़ाह न बचपन में होती थी और न अब। मैं उसको जाएज़ रखता हूँ। आपने अपने रुक़: में मुझको खुल्लम खुल्ला नेचरी बताया है और नेचरी भी मुनासिब तबा और फ़ितरत के साथ। ऐ सुब्हान अल्लाह और क्या कहूँ। मैंने आपकी ख़ातिर से क़सीदः की तशबीब इस नज़र से देखी कि वह बाग़ का फ़ोटू है। मगर आप यक़ीन ही कीजिए कि इसमें एक बरगें ख़िज़ानी का भी फ़ोटू नहीं है। घोड़े की तारीफ़ में जिस शेर की आपने बहुत तारीफ़ की है वह सुरअ़तें रफ़्तार के बाब में उससे ज़ियादः मुबालिग़ः मैं (कि शायर नहीं हूँ) कर सकता हूँ। मर्दें ख़ुदा इस झूठ के तूमार से क्या हासिल। सुरअ़तें ख़याल कहाँ घोड़े की चाल की यह भी कोई

बात है। अगर मेरा घोड़ा पाँच मील बाइसिकिल के साथ दौड़ सके और मैं दौड़ा सकूँ तो विलायत की किसी नुमायश से अव्वल दर्जे का इनाम और तमग़ा हासिल करने के लायक़ हो जाऊँ। आपने तमाम उम्र शायरी की है और मैंने बिलक़स्द एक मिसरा कभी मौज़ूँ नहीं किया। लेकिन बुरा न मानिएगा। हक़ीक़त यह है कि अभी तक आप शायरी के मफ़्हूम से भी वाक़िफ़ नहीं। इल्मँ जमाल जो फ़नँ शेर का माख़ज और अस्ल उसूल है उसका नाम भी आपने न सुना होगा। ख़ैर आपकी उम्र का बहुत बड़ा और क़ीमती हिस्सा तो इस लग़वियात में सर्फ़ हो चुका। अब भी तौबः कीजिए और चन्दरोज़ः हयात को किसी ऐसे काम में सर्फ़ कीजिए जिससे ख़ुदा की ख़ुदाई का या कुछ आपही का भला हो। और अगर 'बफ़हवाए ख़ोए बद दर तबीअ़ते कि नशस्त', आप इससे बाज़ नहीं रह सकते तो अपने साथ होनहार ना-तजर्बेकार लड़कों को तो न तबाह कीजिए। हज़रत आपका पन्द्रह रुपया वसीक़ः था इससे निभ गई। यह बेचारे अगर इस शग़लँ बेकारी में पड़े तो मारे फ़ाक़ों के मर जायँगे।

और हाँ ख़ूब याद आया। तुम हमें भूल गए...अलख़। यह शेर आप ऐसे सिनरसीदः की तरफ़ से मुझ बुड्ढे की शान में किस क़द्र मौज़ूँ है। मुआफ़ फ़रमाइए और आइन्दः ऐसे ख़ुतूत से कभी मुझको याद शाद न फ़र्माया कीजिए।

आपका क़दीम मलामतगर—आबिद

विलायत से एक दोस्त का ख़त

जनाब मिर्ज़ा साहब, तस्लीम। मैं हस्बुल इर्शाद आपके पैरिस के उस कुतुबख़ाने में जिसका पता आपने तहरीर किया है ख़ुद गया और हकीम उमर ख़ैयाम का अलजबरा देखा। वाक़ई जिस मसले के बाब में गुफ़्तगू थी, वह क़दीम मुसलमानों को मालूम था। आपका ख़याल बिलकुल दुरुस्त है। मुझे पेरिस में बहुत ही कम ठहरना था। इसलिए उस किताब की नक़ल हासिल करने की कोशिश न कर सका। और मेरे ख़याल में शायद मुमकिन भी न हो। ब्रिटिश म्यूज़ियम से शायद हर किताब की नक़्ल मिल सकती है मगर ब सर्फ़ँ कसीर। आजकल मेरे ज़िम्मे बहुत काम है। इसलिए तफ़्सीली ख़त न लिख सका। मुआफ़ फ़र्माइए। आइन्दः तातील में आपकी फ़र्माइशात की तामील करने की कोशिश करूँगा।

आपका ख़ादिम-अब्दुलहसनैन

जनाब मन, आप बैरिस्टरी की धुन में हैं। मालूम हो गया कि आपसे मेरा काम न होगा। आपकी "शायद" और "कोशिश" ने मुझे बिलकुल मायूस कर दिया। वह अल्फ़ाज़ जो अफ़ादह मानिएँ शक और शर्त का करते हैं, उनसे मेरी तसल्ली हरगिज़ न होगी। पेरिस आप गए और लाइब्रेरी में भी पहुँचे, इसके लिए आपको वक़्त मिल गया, जिसका मैं मम्नून हुआ। लेकिन अगर क्यूरेटर से इतना और पूछ लेते कि नक़्ल मिल सकती है तो किस तरह, तो कुछ बहुत ज़ियादा वक़्त सर्फ़ न हो जाता। फ्रेंच भी आप काफ़ी तौर से जानते हैं, लिहाज़ा अजनबीयतँ ज़बान का भी उज़्

नहीं चल सकता। यह कहिए कि याद नहीं रहा और याद क्यों न रहा। इसका सबब मुझसे पूछिए। आपको तहक़ीक़ॅ उलूम का ज़ाती शौक़ नहीं है। मुआफ़ कीजिए मैं क़ुदरती साफ़-गो हूँ। लिहाज़ा बेतमीज़ वाक़ै हूँ।

ब्रिटिश म्यूज़ियम आप एक न एक दिन जा सकते हैं। बशर्ते कि उस दिन पार्क जाना मुल्तवी कीजिए। मैं यक़ीनन अर्ज़ करता हूँ कि आपकी सेहत को एक दिन पार्क न जाने से कोई ज़रर नहीं पहुँच सकता। तफ़सीली ख़त लिखिए, दो जुमले लिखिए, मगर मतलब के। ज़ियादः शौक़। आपका दोस्त-आबिद

शेख़ साहब, तस्लीम। आप मुझको बर सबीलॅ शिकायत लिखते हैं कि मेरे ज़िले में जो मज़हबी मुनाज़िरह हुआ तो उसमें मैं क्यों न गया। क्या ज़रूर है कि जिस क़िस्म की तबीअ़त आपकी हो वैसी बेऐनिः मेरी भी तबीअ़त हो। मैंने किसी मुनाज़िरह का यह नतीजा नहीं सुना कि किसी ने ऐसी महफ़िलों के ज़रीये से कोई फ़ैज़ हासिल किया हो। न कोई सुन्नी शिया हुआ, न कोई शिया सुन्नी। न कोई ईसाई मुसलमान हुआ न बिलअक्स। हाँ ज़िद और तअस्सुब किसी क़द्र ज़रूर बढ़ जाता है। और इन क़ूवतों के बढ़ाने की मुझको ज़रूरत नहीं मालूम होती; बल्कि हत्तलइमकान मैं इसके ख़िलाफ़ कोशिश करता हूँ और ख़ुदा से दुआ है कि मुसलमानों की ज़िद और तअ़स्सुब के माद्दे में कमी वाक़ै हो। उलमाए मिल्लत ने काफ़ी सरमाएँ तहक़ीक़ का मोहय्या कर दिया है। ख़ुसूसन अहलॅ इस्लाम ने तो इस बाब में बहुत कुछ सअ़ी[1] की है। यह सरमायः तहक़ीक़ एक अम्र के मुतालआ करने के लिए काफ़ी है। तू-तू, मैं-मैं से क्या फ़ायदा। पहले कुछ फ़िक्रॅ मआश कीजिए और जब यह हासिल हो जाये तो ख़ल्क़ुल्लाह की भलाई की कुछ कोशिश या कम अज़ कम अपनी भलाई की सई फ़रमाइए। वस्सलाम

आपका नियाज़मन्द—आबिद

जनाब आप मुझसे परदए निस्वाँ के बाब में राए तलब फ़र्माते हैं। हज़्रत इस बहसॅ वसीअ़ की अमूमी हैसियत से क़ता नज़र करके मैं एक बात इस मुल्क के बाब में अर्ज़ किये देता हूँ, जहाँ का मैं भी रहने वाला हूँ और आप भी। यानी यह कि हिन्दुस्तान जन्नत निशान। औरतों का परदः तो एक तरफ़, मेरी राए तो यह है कि अगर इख़्लाक़ की दुरुस्ती मंज़ूर है तो मर्द भी पर्दे में बैठें। शहरों की गलियों में जो फ़ॉहश गालियों की बौछार हर चहार तरफ़ से रहती है, ख़ुदा न सुनवाए। आज़ादीए ख़याल के साथ बेग़ैरती मशरूत नहीं है। पहले अपने मुल्क के इख़्लाक़ को इस दर्जः पर लाइए कि लोग इफ़्फ़त[2] के मफ़्हूम की क़द्र करें और सेल्फ़रिस्पेक्ट का ख़याल पैदा हो। फिर औरतों के पर्दे के बाब में कलाम कीजिएगा। अंगरेज़ों की मिसाल न लाइए। वह साहबॅ हुकूमत हैं। सब उनका रोब मानते हैं। उनकी निस्वाँ जब बाज़ार में बग़ैर नक़ाब के निकलती हैं तो कोई मज़ाहम नहीं होता। हमारी

१ कोशिश २ सतीत्व।

औरतें अगर बतरीक़ए अरब और फ़ारस नक़ाबपोश भी निकलें तो क़ियामत हो जाय। मुझे शहर के गली कूचों में ख़ुदा से डरने वाले कहीं नज़र नहीं आते। मिर्ज़ा रुस्वा साहब की राय इस बारे में निहायत ही लतीफ़ और माक़ूल है। वह परदए निस्वाँ के मुख़ालिफ़ हैं। मगर उनका ख़याल है कि इस बाब में कोई अम्र इससे ज़ियादः मुअस्सिर नहीं है। बल्कि जो साहब परदे के मुख़ालिफ़ हैं उनको लाज़िम है कि वह औरत को बेपर्दगी की इजाज़त दें ताकि और लोगों के लिए एक मिसाल हो जाय। रफ़्तः रफ़्तः यही तरीक़ः लोग इख़्तियार करें और जब तक कोई साहब ख़ुद लीडर न बनेंगे यह रस्म क़बीह[1] दूर न होगी।　　वस्सलाम

ख़ादिमुल्-अह्बाब—आबिद

अब्बा जान, बाद आदाब व तस्लीमात के अर्ज़ परदाज़ हूँ। मेरे साथ के पढ़ने वाले तालिबे इल्म अक्सर आपके इफ़ादात से मुस्तफ़ीद होने का शौक़ रखते हैं। इन मुरासिलात में अक्सर कोई अम्र प्राइवेट नहीं होता। इसलिए मुझे इसमें कोई बाक नहीं होता कि और लोग उसे सुनें या पढ़ें। यह मुरासिलः जिसका जवाब मैं लिख रहा हूँ मेरे एक दोस्त मौलवी सलाहुद्दीन बी० ए० ने मुझसे लेके पढ़ा। उनका ख़याल है कि शायद आप जीनियस के क़ाएल नहीं। अगरचें मैंने उनको यक़ीन दिलाया कि नहीं, ऐसा नहीं है। लेकिन उनको तशफ़्फ़ी नहीं होती। लिहाज़ा आप अपने ख़यालात से इस बाबे ख़ास में ज़ियादःतर तौजीह के साथ[2] मुस्तफ़ीद फ़र्माइए।

ख़ादिम बाक़र

अज़ीज़ी बाक़रहुसैन सल्लमहू। मेरी तरफ़ से मौलवी सलाहुद्दीन साहब को सलाम कहना। नहीं यह बात नहीं है कि मैं जीनियस का क़ायल नहीं हूँ। मैंने अपने पहले ख़त में साफ़ लिख दिया है कि किसी क़ाबिलीयत का हद से ज़ियादः या कम होना अमूमन नहीं पाया जाता। औसत दर्जे की सूरत, दिमाग़, ज़ेहन, फ़ितरत की तरफ़ से हर शख़्स को इनायत हुआ है। इस इबारत से जीनियस का इन्कार कहीं नहीं निकलता। मौलवी सलाहुद्दीन साहब का ख़ौफ़ इस बाबे ख़ास में क़ाबिले क़द्र है। जज़ाहुल्लाह ख़ैरन्जज़ा। मगर यह भी याद रहे कि लाज़ आफ़ नेचर को उसके लग़वी माने में मैं हरगिज़ नहीं लेता, और न कोई आक़िल दीनदार इसका क़ायल हो सकता है। यह एक आमियानः मुहाविरः है। मैं हर मौजूदः हादिस को एक फ़ाएल क़ादिरोमुख़्तार का फ़ेल समझता हूँ। मेरा यह एतक़ाद है कि बस ऐसा ही होना चाहिए था जैसा कि हुआ।　　रक़ीमः दुआ—आबिद

इन ख़ुतूत के अलावा और बहुत से ख़ुतूत मिर्ज़ा साहब के नाम आए और उनके जवाब लिखे गये और हर एक ख़त उनमें किसी न किसी मसले इल्मी की बहस पर है। मगर अभी दस्तयाब नहीं हुए और इसी तरह वह मज़ामीन जो वक़्तन् फ़वक़्तन्

---

१ बुरी रूढ़ि (कुरीति)　　२ स्पष्ट।

उन्होंने लिखे हैं आइन्दः जब दस्तयाब हो जायँगे तो हम उनको बतौर मकातँबात मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब अलाहिदः छापकर शाया करेंगे।

मुहसिने क़ौम मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब दामबरकातहू तस्लीम। ख़ुदा आपकी हिम्मतों में बरकत दे। मैंने सुना है कि आप अक्सर बकारआमद इल्मों का तर्जुमा फ़र्मा रहे हैं। वाक़ई इससे क़ौम और मुल्क को बड़ा फ़ायदा पहुँचेगा। और जैसा कि आपका ख़याल है उर्दू ज़बान की तरक़्क़ी भी उसी में मुतसव्वुर है। ख़ुदा आपको जज़ाए ख़ैर दे।

जिस क़द्र किताबें तबा होती जायँ, उसकी एक-एक जिल्द बज़रियें वैल्यू पे-बिल पार्सल मुझको रवाना फ़र्माते रहिए। बल्कि मेरा शौक़ तो यह चाहता है कि जिस क़द्र अजज़ाए जिस किताब के छपते जायँ वह मुझको पहुँचते जायँ।

इस मुआमिले में आपके साथ मुत्तफ़िक़ हूँ। जब तक उलूम हमारी ज़बान में न आएँगे, मुल्क और क़ौम की तरक़्क़ी नहीं हो सकती। मगर एक अम्र क़ाबिलॅ गुज़ारिश है। उसे निहायत अदब के साथ अर्ज़ करता हूँ। वह यह है कि मुझे ख़ौफ़ है कि यह तर्जुमे जो आप फ़र्मा रहे हैं—और ज़रूर है सर्फ़-कसीर से छापे जायँ—इसके ख़रीदार मुल्क में बहुत कम लोग होंगे; क्योंकि मुल्क में दो क़िस्म की दर्सगाहें हैं। एक अंगरेजी। उनमें उलूम अंगरेज़ी ज़बान में पढ़ाये जाते हैं। दूसरे मुसलमानों की प्रायवेट दर्सगाहें। अव्वल तो उनकी तादाद बहुत कम है, सिर्फ़ देहली या लखनऊ में दो चार अहलॅ इल्म अपने घरों या मसजिदों में दर्स[1] देते हैं। उनमें वही क़दीम अरबी किताबें पढ़ाई जाती हैं। सालहा साल से जो कोर्स मुक़र्रर हो गया है उसमें किसी क़िस्म का तग़ैयुर[2] नहीं होता। और न मौजूदः हालत को देख के कोई कह सकता है कि उनमें कोई तग़ैयुर वाक़ै होगा। मैंने भी कुछ दिनों लखनऊ में तालिबइल्मी की है। वहाँ के ख़यालात से मैं बख़ूबी वाक़िफ़ हूँ। फिर इन तर्जुमों के ख़रीदार कौन लोग समझे जायँ। पंजाब यूनीवर्सिटी जब नई-नई क़ाइम हुई थी तो वहाँ यह ख़याल पैदा हुआ था कि मग़रबी उलूम बज़रिये देसी ज़बानों के तालीम दिये जायँ। मगर बाज़ अक़लाएँ क़दीम ने बड़े ज़ोर से मुख़ालिफ़त की और वह मुख़ालिफ़त ज़माने को देखते हुए बहुत बे-मौक़े न थी। इसीलिए पंजाब यूनीवर्सिटी में और ओरियेण्टल डिगरियों के उम्मीदवारों की फ़िहरिस्त रोज़ बरोज़ कम होती जा रही है। फिर आप के तर्जुमों की खपत कहाँ होगी। आख़िर मेरा ज़ाती शौक़ यही चाहता है कि जुमलः उलूम अंगरेज़ी बल्कि तमाम मग़रबी ज़बानों से तर्जुमा होके उर्दू ज़बान में आ जायँ; मगर यह एक क़िस्म की आरज़ू है और ज़रूर नहीं कि हर आरज़ू पूरी हो। अए बसा आरज़ू कि ख़ाक़ शुदः।

---

१ सबक़ २ परिवर्तन।

मैंने आपका बहुत सा क़ीमती वक़्त ज़ाया किया। मुआफ़ कीजिएगा। बन्दः को एक मुख़लिस अपना तसव्वुर फ़र्मा के कारोबारँ लायक़ः से याद फ़र्माया कीजिए। ज़ियादः नियाज़—

राक़िम
बशीरुद्दीन अहमद एम० ए०
अज़ बरेली

जनाब बशीरुद्दीन साहब एम० ए० दाम अल्ताफ़हू तस्लीम। आपका ख़त मुर्सिला आया। वाक़ई आपकी राए बहुत सही है। और यह उमूर मैं पहले ही समझे हुए हूँ। मगर जब किसी अम्र की ख़ूबी मुतहक़्क़िक हो जाय उसको सिर्फ़ इस ख़याल से कि लोग क़द्र न करेंगे, तर्क कर देना हिम्मत से बअ़ीद है। अब तो यह काम मैंने शुरू किया है और ख़ुदा चाहे तो पूरा भी हो जायगा। और रफ़्तः रफ़्तः क़द्रदान भी निकल आयँगे। मैंने अपने सरमाए का एक जुज़ इस मतलब के लिए अलाहिदः कर दिया है। उससे यह किताबें छापकर रख ली जायँगी और वक़्तन फ़वक़्तन बिकती रहेंगी। बफ़र्ज़ँ मोहाल जो कुछ आमदनी इस काम से होगी उसमें मैंने अपना कोई हिस्सा नहीं रखा, बल्कि वह उसी मक़्सद के लिए सर्फ़ किया जायगा। अफ़सोस यह है कि मैं एक क़लीलुल्बिज़ाअ़त शख़्स हूँ। सिर्फ़ पाँच हज़ार रुपया इस कारँ ख़ैर के लिए मैं सर्फ़ कर सका। चन्दः माँगना मेरी चिढ़ है। मैं उसे बुरा नहीं समझता। मगर यह काम मुझसे नहीं हो सकता। जो अपने से हो सका वह मैंने कर दिया। शायद आपने सुना होगा कि मैंने वेब्सटर डिक्शनरी को भी उर्दू में तर्जुमा करना शुरू किया है। अगर यह काम बख़ैरॉ-आफ़ियत ख़त्म हो गया तो गोया कुल उलूम का तर्जुमा उर्दू में हो गया। इसलिए कि शायद आपको इससे इन्कार न होगा कि न सिर्फ़ मुझको बल्कि मुल्क में अक्सर साहबों को मिस्ल मेरे तर्जुमा उलूम का शौक़ है। लेकिन अक्सर तर्जुमें बेतुके होते हैं या यों कहिए कि हर तर्जुमे का एक जुदागानः तुक होता है। इस सही डिक्शनरी का तर्जुमा हो जाने से एक ज़ख़ीरः मायनों का (जिनमें से अक्सर मेरी गढ़ी हुई होंगी) ज़बानँ उर्दू में मोहय्या हो जायगा। जब तक कोई काम अंजाम को नहीं पहुँचता उसको मन्सूबः समझना चाहिए। ख़ुलासा यह कि अभी तो यह सब मन्सूबे हैं। जब कोई काम अंजाम को पहुँचे तो तबीअ़त को तशफ़्फ़ी हो। ज़ियादः नियाज़।

ख़ादिम
आबिद—लखनऊ

मिर्ज़ा रुस्वा का ख़त आबिदहुसैन के नाम

मख़्दूमी व मुकर्रमी मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब दाम फ़ैज़हू तस्लीम। अल्हम्दु लिल्लाह आपकी सवानहउमरी तमाम हुई और हस्बुल्हुक्म आपके मैंने इसमें से अशआर को बिलकुल महज़ूफ़ कर दिया। ख़ुतूत की नक़लें भी हो गईं। सिर्फ़ एक बात बाक़ी है और वह यह है कि इस सवानःउमरी का इख़्तिताम[1] आपही के कलाम

१ समाप्ति।

पर हो। लिहाज़ा मुतरस्सद हूँ कि बजवाब रक़ीमए हाज़ा इस अम्र अहम से मुत्तला फ़र्माइए कि शेरो-शायरी से आपको इस क़द्र तनफ़्फ़ुर क्यों है। आप यह समझ सकते हैं कि मेरा यह सवाल आपसे कुछ ऐसा बेजा नहीं है। इसलिए कि मेरी उम्र का एक बहुत बड़ा हिस्सा इस ख़ब्त में बसर हुआ है। इस अम्र के लिखने की मुझे कोई ज़रूरत नहीं है कि आप अपनी राय निहायत बेतक़ल्लुफ़ी से ज़ाहिर फ़र्माएँगे। इस अम्र की न किसी को आपसे तवक़्क़ु: है और न होना चाहिए कि आप क़िसी अम्र में किसी की मुरव्वत करेंगे। इसलिए कि आप मुझसे बारहा फ़र्मा चुके हैं कि मुरव्वत का मफ़्हूमें-आम एक ख़ुल्की ज़ोफ़ है और यह ज़ोफ़ तरह-तरह की इख़्लाक़ी बुराइयों का मूजिब होता है। नियाज़मन्द-रुस्वा

जनाब मिर्ज़ा साहब तस्लीम। आपको मेरे बाज़ ख़ुतूत से, जो इस सवानें: उमरी के साथ आपने शाया किये हैं, मालूम होगा कि मैं तसावी इस्तेंदाद का क़ाएल हूँ। जो ख़ूबियाँ एक फ़र्देबशर में पाई जाती हैं मै बाज़ क़ुयूद के, जिनका ज़िक्र उन ख़ुतूत में हो चुका है, उनको हर इंसान के लिए आम समझता हूँ। अगर मेरा ख़याल सही है तो मैं कुछ कह सकता हूँ कि मैं भी मौज़ूँ-तबा और बिल्क़ूह शायर हूँ और इसी तरह आप बिल्क़ूह मेकैनिक हैं। लेकिन मुझको बित्तबअ़ उन कामों से तनफ़्फ़ुर है जो बहुत से लोगों का शेआर हो जाता है। चुनाँचें: आप ख़ूब जानते हैं कि मैंने अपने बड़े लड़के बाक़र सल्लमहू की तमाम उम्मीदों और उमंगों को (जो उसके हम-उम्र नौजवानों को बाद दर्जएँ फ़ज़ीलत पर फ़ाएज़ होने के अमूमन हुआ करती हैं) ख़ाक में मिलाकर न उसे नौकरी करने दी, न वकालत का इम्तहान पास करने दिया। बल्कि अच्छा ख़ासा हरवाहा बना लिया। अब वह माशा अल्लाह ज़राअ़त के कारोबार में मुझसे बेहतर हो गया। दिमाग़ी वरज़िश का सरमाया भी मैंने उसके लिए काफ़ी तौर से फ़राहम कर लिया था। अब उसके बाज़ तर्जुमे अरबी किताबों के अंगरेज़ी ज़बान में विलायत पहुँचे। यक़ीन है कि अन्क़रीब शाया होकर आप तक पहुँचें। अंगरेज़ी किताबों का तर्जुमा मुवाफ़िक़ उस मंसूबे के, जिसको बाज़ उक़ला नामुमकिन समझ रहे हैं, बराबर हो रहा है। वेब्सटर डिक्शनरी का तर्जुमा होता जाता है। आप देखिएगा कि उस निअ़मत से उर्दू ज़बान दफ़तन किस मरतबः पर पहुँच जायगी। और उलूम के तर्जुमः करने वालों को कैसी सुहूलत होगी और इंशा अल्लाह बहुत ही जल्द उसका समरः ज़ाहिर होगा। अक्सर कलों के नमूने जिनकी मुल्क व क़ौम को ज़रूरत है, हम बाप-बेटों ने मिलकर तैयार कर लिये। ख़ुदा ने चाहा तो अन्क़रीब वह दिन आयगा जब मैं अपने फ़ारम पर एक प्राइवेट नुमायश करके दुनिया को दिखादूँगा कि क़ौम के एक या दो मुतनफ़्फ़िस भी आम ख़यालात और आमियानः अशग़ाल से बाज़ रह करके क्या कुछ कर सकते हैं।

फिर इस बात को एक मर्तबा दुहराने दीजिए। यह सब औसाफ़ मेरे ही लिए

मख़्सूस नहीं हैं, और लोग मुझसे बेहतर इन कामों को अंजाम देंगे। अब आप ही इंसाफ़ कीजिए कि अगर हम बाप बेटे शायरी की तरफ़ झुक जाते तो वह ग़ज़ल कहता और मैं इसलाह देता। मुशायरों में ग़ज़लें पढ़ी जातीं। कुछ लोग ख़ातिर से वाह-वाह कर देते तो उससे मुल्क और क़ौम को कौन सा फ़ाएदा पहुँचता। शायरी का शौक़ मुसलमानों में एक अरसए दराज़ से नस्लन बाद नस्लन चला आता है और उसमें जिस क़द्र एशियाई मफ़्हूम शेर से हो चुकी है वह ज़रूरत से ज़ियादः है।

मगर असली शायरी जो अह्लें यूनान का मफ़्हूम था या उमूमन अह्लें योरप का है उस रास्ते में अभी हमारे शोअरा एक दो क़दम भी नहीं चले हैं। हमारे लिए वह तरीक़ा बिलकुल नया है। आपकी उम्र का एक बहुत बड़ा हिस्सा इस फ़न में सर्फ़ हुआ है। अगर आप उसकी तरफ़ तवज्जुः फ़र्माएँ तो ज़ेबा है। अगर्चे मैं उसे भी तर्कऔला कहूँगा। इसलिए कि आप ख़ूब जानते हैं कि मैं भूक से सदमे उठाए हुए हूँ। इसलिए मैं सबसे ज़ियादः ज़रूरी उन मशग़लों को समझता हूँ जिससे उस दर्द का इलाज हो।

एक और बात भी मेरे ज़ेहन में समा गई है कि इन कमेटियों और सोसाइटियों से कुछ होता नहीं है। बहुत बड़े-बड़े काम शख़्सी मेहनतों से हो सकते हैं। कमेटियों में इख़्तलाफ़ॅ राय और चुना व चुनी में बहुत सा वक़्त ज़ाया हो जाता है। मैं एक जंगजू जाहिल क़ौम से हूँ। अगर-मगर से मुझे चिढ़ है। जो काम करना है उसको शुरू करके तमाम करना चाहिए। पराये भरोसे से दुनिया का काम नहीं चलता। क़ौम में जो लोग ज़ी-इल्म और ज़ी-शऊर हैं वह ख़ुद इस बात को समझ सकते हैं कि हमें किन-किन बातों की ज़रूरत है। उनमें से किसी एक ज़रूरत के पूरा करने के लिए अगर एक ही शख़्स कमर चुस्त बाँध ले और कुछ कर चले तो बहुत कुछ हो जायगा। मैंने ख़ुद एक ग़लती की कि बहुत से काम अपने ज़िम्मे ले लिये। अगर मैं ख़ुद सिर्फ़ एक ही काम बल्कि एक काम के कोई जुज़ की तकमील अपने ऊपर लाज़िम कर लेता तो शायद ज़ियादः फ़ायदा पहुँचा सकता। मगर ख़ैर जिन चीज़ों को मैंने इख़्तियार कर लिया है, मैं उम्मीद करता हूँ कि उस काम को अंजाम दे दूँगा।

अब मैं इस मुबारक फ़िक़्रे पर अपने ख़त को, जो आपकी किताब का अंजाम है, ख़त्म करता हूँ।

अस्सैयु मिन्नी वल् अित्मामु मिनल्लाहि।

नियाज़केश
आबिद

जब होवत प्रभ केवल धनी तब बंध मुकति कहु किस कउ गनी।
जब एकहि हरि अगम अपार तब नरक सुरग कहु कउन अउतार।
जब निरगुन प्रभ सहज सुभाइ तब सिव सकति कहहु कितु ठाइ।
जब आपहि आपि अपनी जोति धरै तब कवन निडरु कवन कत डरै।
आपन चलित आपि करनैहार नानक ठाकुर अगम अपार ॥ २ ॥

वाहिद[1] ज़ात ख़ुदाई थी जब शान उसकी यकताई[2] थी
किसको बन्दिश[3] हासिल थी तब किसने मुक्ती पाई थी
बे-ग़ायत[4] बे-थाह[5] ख़ुदा जब एक अकेला छाया था
जन्नत में कौन आया था और दोज़ख़ किसने पाया था
सब वस्फ़ों से बाला रब को एक सकून में हस्ती थी
'शिव' किस घर में रहता था तब 'शक्ती' किस जाँ बसती थी
आप ही अपनी आखों में जब अपना नूर दिखाता था
कौन किसी से डरना था और कौन निडर कहलाता था
आप चलाये आप चले यां और कोई करतार नहीं
'नानक' रब की थाह नहीं कुछ वार नहीं कुछ पार नहीं ॥२॥

अविनासी सुख आपन आसन तह जनम मरन कहु कहा बिनासन।
जब पूरन करता प्रभु सोइ तब जम की त्रास कहहु किसु होइ।
जब अबिगत अगोचर प्रभ एका तब चित्रगुपत किसु पूछत लेखा।
जब नाथ निरंजन अगोचर अगाधे तब कउन छुटे कउन बंधन बाधे।
आपन आप आप ही अचरजा,
नानक आपन रूप आप ही उपरजा ॥ ३ ॥

सुख के आसन पर जब क़ायम वह हस्ती लाफ़ानी[6] थी
मरना जीना कैसा था कब दुनिया आनी जानी थी
कामिल[7] ज़ात ख़ुदा की थी बस ख़ालिक़ एक अकेला था
मौत का किसको खटका था मरने का दूर झमेला था
फ़हम[8] से बाला[9] बातिन[10] रब वह आप अकेला रहता था
चित्र हिसाब न करता था और लेखा गुप्त न रखता था

---

१ एकमात्र २ अनुपम ३ बन्धन ४ अनन्त ५ अथाह ६ अविनाशी ७ पूर्ण ८ बुद्धि-विवेक ९ ऊँचा १० अन्तर्यामी।

तनहाई[1] में वाहिद[2] मालिक पाक निरंजन[3] प्यारा था
किसको कौन जकड़ता था और किसका कब छुटकारा था
आप ही आप अचम्भा है हैरानी पर हैरानी है
अपना रूप वह आप ही धारे 'नानक' वह लासानी[4] है।

जह निरमल पुरखु पुरख पति होता तहि बिनु मैलु कहहु किआ धो
जह निरंजन निरंकार निरबान,
तह कउन कउ मान कउन अभिम
जह सरूप केवल जगदीस तह छल छिद्र लगत कहु की
जह जोति सरूपी जोति संगि समावै तहि किसहि भूख कवनु तृपत
करन करावन करनैहारु नानक करते का नाहि सुमारु।

पाक खुदा बेलाग[5] खुदा जब आप अकेला होता था
पाप कपट का मैल न था कौन इसको मल मल धोता था
जब बेलौस[5] निरंजन की बेसूरत सूरत होती थी
किसकी इज़्ज़त होती थी तब किसकी ज़िल्लत होती थी
एक मालिक की हस्ती थी मौजूद ही कोई ग़ैर न था
कौन किसी को छलता था दम झाँसा धोखा बैर न था
नूर था गुम नूरानी में § कुछ मेरी और न तेरी थी
भूख किसे फिर लगती थी और किसको होती सेरी[7] थी
जो कुछ होता रहता है सब करता है करतार वही
करता है करतार ही 'नानक' है बेअन्त शुमार वही।

जब अपनी सोभा आपन संगि बनाई,
तब कवन माइ बाप मित्र सुत भ
जह सरब कला आपहि परबीन तह बेद कतेब कहा कोऊ ची
जब आपन आपु आपि उरिधारै तउ सगन अपसगन कहा बीच
जह आपन ऊच आपन आपि नेरा तह कउन ठाकुरु कउनु कहीऐ चे
बिसमन बिसम रहे बिसमाद नानक अपनी गति जानहु आपि।

१ केवलत्व २ एकमात्र ३ निर्विकार ४ अद्वितीय ५ निरपेक्ष ६ [illegible]
७ तृप्ति।

§ ज्योति ज्योतिपुञ्ज में—जीव ईश्वर ही में लीन था।

मख़्फ़ी[1] शान ख़ुदाई थी सब ज़ात में ज़ात समाई थी
कौन था उस दिन ख़्वेश[2] बिरादर बेटा बाप न माई थी
हर फ़न में वह कामिल[3] था मुहताज न था वह ग़ैरों का
वेद भी किसने बाँचे थे और कौन किताबें पढ़ता था
आप छिपाये रखता था तदबीरों के मज़मूनों को
कौन बिचारा करता था फिर नेक और नजिस[4] शुगूनों[5] को
दूर भी था वह पास न था वह पास भी था वह दूर न था
कौन था आक़ा[6] कौन था चाकर रुतबों का दस्तूर न था
दुनिया की नैरंगी[7] से हैरानी ही हैरानी है
'नानक' अपनी आप ही जाने शान बड़ी रब्बानी[8] है ।।५।।

जह अछल अछेद अभेद समाइआ ऊहा किसहि बिआपत माइआ ।
आपस कउ आपहि आदेसु तिहु गुण का नाही परवेसु ।
जह एकहि एक एक भगवंता तह कउनु अचिंतु किसु लागै चिंता ।
जह आपन आपु आपि पतीआरा तह कउनु कथै कउनु सुननैहारा ।
बहु बेअंत ऊच ते ऊचा,
नानक आपस कउ आपहि पहूचा ।। ६ ।।

भेदों छेदों छल से बाला आप में आप समाया था
तब माया के धोखे में कौन आया था कौन आया था
आप उसे आदेश थी अपनी ग़ैरों का परनाम न था
सतगुन रजगुन तमगुन का इस दुनिया में कुछ काम न था
आप ही था भगवान अकेला ग़ैरों का कुछ ज़िक्र न था
किसको चिन्ता लगती थी और कौन था जिसको फ़िक्र न था
अपने आप तसल्ली[9] थी और ख़ुद से इत्मीनान भी था
कौन कथाएँ करता था और करता कौन बयान भी था
हद दर्जे बेअन्त है वह ऊँचों से ऊँची बात उसकी
अपनी आप नज़ीर[10] वह 'नानक' बेहमता[11] है ज़ात उसकी ।।६।।

जह आपि रचिओ परपंचु अकारु तिहु गुण महि कीनो बिसथारु ।
पापु पुंनु तह भई कहावत कोऊ नरक कोऊ सुरग बंछावत ।

---

१ गुह्य, छिपी हुई २ आत्मीय, स्वजन ३ पूर्ण ४ अपवित्र ५ शकुन ६ मालिक ७ माया-जाल ८ ईश्वरी ९ संतोष १० उदाहरण ११ अनुपम, बेमिसाल

आल जाल माइआ जंजाल हउमै मोह भरम भै भार।
दूख सूख मान अपमान अनिक प्रकार कीओ बख्यान।
आपन खेलु आपि करि देखै खेलु संकोचै तउ नानक एकै ॥७॥

यह रचना जो उसने रचाई झूठम झूठ पसारा है
सतगुन रजगुन तमगुन से फैलाया आलम सारा है
गुन फैले तो पाप औ पुन की बातों का मज़कूर[१] हुआ
ज़िक्र करे एक दोज़ख़ का एक जन्नत से मसरूर[२] हुआ
जाल बिछाया माया ने धोखे के फैले तार कहीं
मोह कहीं है दुनिया का डर ख़ौफ़ कहीं पिनदार[३] कहीं
दुख भी आया सुख भी आया ज़िल्लत आई शान हुई
लाख तरह की हिकमत आई सौ सौ बात बयान हुई
आप ही 'नानक' खेल को देखे आप ही उसने खेला है
जब वह खेल समेटे अपना रहता आप अकेला है ।।७।।

जह अबिगतु भगतु तह आपि जह पसरै पासारु संत परतापि
दुहू पाख का आपहि धनी उनकी सोभा उनहू बनी
आपहि कउतक करै अनद चोज आपहि रस भोगन निरजोग
जिसु भावै तिसु आपन नाइ लावै जिसु भावै तिसु खेल खिलावै
बेसुमार अथाह अगनत अतोलै,
जिउ बुलावहु तिउ नानक दास बोलै ॥ ८ ।

मख़्फ़ी[४] रब के भक्त जहाँ[५] में आप वह उनमें प्यारा है
सन्तों के परताप की ख़ातिर फैला आलम सारा है
दोनों का है आप ही मालिक दोनों का है आप धनी
उनकी शोभा होती है तो समझे मेरी शान बनी
आप ही खेले खेल तमाशे ख़ुशियाँ आप मनाये वह
आप मगर बेलाग़[६] रहे गो सारे लुत्फ़ उठाये वह
जिनको चाहे नाम से अपने उनका प्रेम लगाये वह
हुक्म जिन्हें फ़रमाये वह दुनिया का खेल खिलाये वह
उसकी थाह शुमार न कोई कौन गिने या तौलेगा
जैसे आप बुलाये 'नानक' दास भी वैसे बोलेगा ॥८॥

१ चर्चा २ प्रसन्न ३ अभिमान ४ छिपे हुये ५ संसार ६ निरपेक्ष ।

सलोकु

जीअ जंत के ठाकुरा
आपे वरतणहार ।।
नानक एको पसरिआ
दूजा कह दृसटार ।। १ ।।

मालिक कुल मख़लूक़[1] का सब में तेरा नूर[2]
'नानक' दुई[3] न देखिये फैला एक का नूर

असटपदी २२

आपि कथै आपि सुननैहारु आपहि एकु आपि बिसथारु ।
जा तिसु भावै ता सृसटि उपाए आपनै भाणै लए समाए ।
तुम ते भिन नही किछु होइ आपन सूति सभु जगतु परोइ ।
जा कउ प्रभ जीउ आपि बुझाए सचु नामु सोई जनु पाए ।
सो समदरसी तत का बेता नानक सगल सृसटि का जेता ।।१।।

आप कहे और आप सुने तू अपनी आप हिकायत[4] है
वहदत[5] में तू वहदत है और कसरत[6] में तू कसरत है
दुनिया तू ने पैदा की है जब ख़ुद तुझ को भाया है
फिर जब तुझ को भाया है जग तुझमें आन समाया है
बे तेरे क्या होता है तू सब कुछ करने वाला है
जग की तूने तार में अपने आप पिरोई माला है
जिसको रब ने ख़ुद समझाया सच से रखे काम वही
पाये सच्चा नाम वही हाँ पाये सच्चा नाम वही
सब को एक नज़र जो देखे असल हक़ीक़त[7] पाता है
सब दुनिया को जीते 'नानक' फ़ातेह[8] वह कहलाता है ।।१।।

जीअ जंत्र सभ ता कै हाथ दीन दइआल अनाथ को नाथु ।
जिसु राखै तिसु कोइ न मारै सो मूआ जिसु मनहु बिसारै ।

---

१ सृष्टि २ प्रकाश ३ द्वैतभाव ४ कहानी ५ एकत्व ६ अनेकत्व ७ परम सत्य ८ विजेता ।

तिसु तजि अवर कहा को जाइ सभ सिरि एकु निरंजन राइ।
जीअ की जुगति जाकै सभ हाथि अंतरि बाहरि जानहु साथि।
गुननिधान बेअंत अपार नानक दास सदा बलिहार ॥ २ ॥

हाथ में उसके सारी ख़िल्क़त[१] मालिक सब जाँदारों में
बेवाली[२] का वाली[३] है वह चारा है बेचारों में
मालिक जिसको रखना चाहे कोई न उसको मारेगा
मौत के मुँह में जा पहुँचेगा जिसको आप बिसारेगा
उसका दामन छोड़ के हम ग़ैरों के पीछे जायें क्यों
सबके सर पर एक निरञ्जन ग़ैर का साया पायें क्यों
सबकी चाबी हाथ में उसके जीता रखे मारे वह
अन्दर बाहर ज़ाहिर-बातिन[४] हर दम साथ हमारे वह
सब वस्फ़ों का आप ख़ज़ीना[५] अन्त न कोई पायेगा
'नानक' दास उसी का है वह उसके वारी जायेगा ॥२॥

पूरनि पूरि रहे दइआल सभ ऊपरि होवत किरपाल।
अपने करतब जानै आपि अंतरजामी रहिओ बिआपि।
प्रतिपालै जीअन बहु भाति जो जो रचिओ सु तिसहि धिआति।
जिसु भावै तिसु लए मिलाइ भगति करहि हरि के गुण गाइ।
मन अंतरि बिस्वासु करि मानिआ,
करनहारु नानक इकु जानिआ ॥ ३ ॥

रहमत वाला बख़्शिश वाला हर जाँ उसकी हस्ती है
बारिश उसकी रहमत की हम सब पर ख़ूब बरसती है
अपने काम वह आप ही जाने कुछ कहना ख़ुदकामी[६] है
सब भेदों से वाक़िफ़ है वह आप ही अन्तरजामी है
पालनहार वह सब का है हर रंग व रोज़ी देता है
जो जो पैदा होता है वह नाम उसी का लेता है
जिसको वह मँज़ूर करे ख़ुद अपने साथ मिलाता है
रब की भक्ती करता है वह मालिक के गुन गाता है

१ सृष्टि २ असहाय ३ संरक्षक ४ व्यक्त-अव्यक्त ५ ख़ज़ाना ६ उच्छृंखलता।

मन जिसका ईमान से पुर[1] है ख़ास यक़ीं[2] से मानेगा
'नानक' करता-धरता सबका एक प्रभू को जानेगा ॥३॥

जनु लागा हरि एकै नाइ तिसकी आस न बिरथी जाइ ।
सेवक कउ सेवा बनि आई हुकमु बूझि परमपदु पाई ।
इस ते ऊपरि नही बीचारु जा कै मनि बसिआ निरंकारु ।
बंधन तोरि भए निरवैर अनदिनु पूजहि गुर के पैर ।
इहं लोक सुखीए परलोक सुहेले नानक हरि प्रभि आपहि मेले ॥४॥

रब का बन्दा याद जिसे हर वक़्त प्रभू का नाम रहे
पूरी हों उम्मीदें उसकी जग में कब नाकाम[3] रहे
ख़ादिम[4] पर ख़िदमत[5] है लाज़िम[6] सेवक करता सेवा है
हुक्म जो माने रुतबा पाये सेवा ही से मेवा है
बे सूरत की सूरत वाला जिसके मन में बसता है
सब से ऊँची अक़्ल है उसकी आली उसका रुतबा है
सारे बन्धन तोड़ेगा वह बैर न रखे ग़ैरों से
रात हो दिन हो प्रेम उसे है अपने गुरु के पैरों से
इस दुनिया में सुख पाये और आगे भी आराम मिले
'नानक' वह मिल जाये रब से वस्ल[7] का उसको जाम[8] मिले ॥४॥

साध संगि मिलि करहु अनंद गुन गावहु प्रभ परमानंद ।
राम नाम ततु करहु बीचारु द्रुलभ देह का करहु उधारु ।
अंमृत बचन हरि के गुन गाउ प्रान तरन का इहै सुआउ ।
आठ पहर प्रभ पेखहु नेरा मिटै अगिआनु बिनसै अंधेरा ।
सुनि उपदेसु हिरदै बसावहु मन इछे नानक फल पावहु ॥ ५ ॥

संतों की संगत में मिलकर जी अपना ख़ुरसंद[9] करो
मालिक परमानन्द तुम्हारा गुन गाओ आनन्द करो
नाम ईश का हक़ है उसको सोचो और बिचारो तुम
क़िस्मत से मिलता है जीना जीवन ख़ूब सवाँरो तुम

---

१ पूर्ण २ विश्वास ३ असफल ४ सेवक ५ सेवा ६ कर्तव्य ७ तन्मयता ८ (मदिरा का) प्याला ९ आनन्दित ।

ज़िक्र ख़ुदा का अमरित है गुन गाना काम तुम्हारा है
रूह किनारे लग जायेगी उससे पार उतारा है
देखो पास प्रभू को हरदम दिल पुरनूर[1] तुम्हारा है
मिट जाये अज्ञान तुम्हारा दूर अँधेरा सारा है
उपदेशों को सुन-सुन कर जब मन में नाम बसाओगे
'नानक' जैसा दिल चाहेगा वैसा ही फल पाओगे ॥५॥

हलतु पलतु दुइ लेहु सवारि राम नामु अंतरि उरि धारि ।
पूरे गुर की पूरी दीखिआ जिसु मनि बसै तिसु साचु परीखिआ ।
मनि तनि नामु जपहु लिव लाइ दूखु दरदु मन ते भउ जाइ ।
सचु वापारु करहु वापारी दरगह निबहै खेप तुमारी
एका टेक रखहु मन माहि नानक बहुरि न आवहि जाहि ॥६॥

यह दुनिया भी ख़ूब सवाँरी अगली दुनिया ख़ूब बनाव
नाम ख़ुदा का मन में लेकर मन की दुनिया आप बसाव
गुरु कामिल[2] तालीम[3] भी कामिल पक्का उसका रस्ता है
यह तालीम जो हासिल हो फिर हिरदे में सच बसता है
नाम जपो हक़ नाम जपो तन-मन में इससे प्रेम लगाव
नाम जपो हक़ नाम जपो सब ख़ौफ़ कटे दुख दर्द मिटाव
सच ही का ब्यौहार करो गर तुम सच्चे ब्योपारी हो
फिर दरगाह में रब के प्यारे सारी खपत तुम्हारी हो
मन को टेकन[4] दो एक रब की एक सहारा पाओ तुम
मरना जीना ख़त्म हो सारा 'नानक' आओ न जाओ तुम[5] ॥६॥

तिस ते दूरि कहा को जाइ उबरै राखनहारु धिआइ ।
निरभउ जपै सगल भउ मिटै प्रभ किरपा ते प्राणी छुटै ।
जिसु प्रभु राखै तिसु नाही दूख नामु जपत मनि होवत सूख ।
चिंता जाइ मिटै अहंकारु तिसु जन कउ कोइ न पहुचनहारु ।
सिर ऊपरि ठाढा गुरु सूरा नानक ताके कारज पूरा ॥ ७ ॥

---

१ प्रकाशपूर्ण २ पूर्ण ३ शिक्षा ४ आश्रय ५ आवागमन से मुक्त हो ।

कहा कि मैं जिहाद करना चाहता हूँ, मगर मेरे पास सामान नहीं है। आपने फ़रमाया, फलाँ ने सामान किया था मगर वह बीमार हो गया, उसके पास जाओ। वह लड़का उनके पास आया और कहा रसूलल्लाह (सल्०) सलाम कहते हैं और फ़रमाते हैं कि जो सामान लड़ाई के लिए (तुमने) मुहय्या किया था वह मुझे दे दो। उन्होंने अपने घर वालों से कहा कि जो कुछ मैंने सामान किया था वह इनको दे दो। कुछ बाक़ी न रखना। तुम्हारे लिए इसमें बर्कत होगी। [मुस्लिम]

नेकी और परहेज़गारी पर मदद

आयात

…व तआवनू अलल्बिर्रि वत्तक़्वा …

एक दूसरे की नेकी और परहेज़गारी में मदद करो।

[सू० माअिद:, रु० १ आ० २]

वल्अस्रि (१) अिन्नल्अिन्सान लफ़ी ख़ुस्रिन् (२) अिल्लल्लज़ीन आमनू व अमिलुस्सालिहाति व तवासौ बिल्हक़्क़ि व तवासौ बिस्सब्रि (३)

और क़सम है ज़माने की, इन्सान अल्बत्ता नुक़सान में है। मगर (वह नुक़सान में नहीं हैं) जो ईमान लाये और जिन्होंने अच्छे काम किये, एक दूसरे के हक़ की वसिय्यत की और एक दूसरे को सब्र की वसिय्यत की। [सू० अल्अस्रि रु० १ आ० १-३]

अहादीस

२६६ मुजाहिद[1] की मदद उसके घर की ख़बरगीरी करनेवाले को जिहाद का सवाब

हज़्रत ज़ैद (र०) बिन ख़ालिदिल्जुहनी से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, कि अगर किसी ने जिहाद करने वाले के लिए सामान मुहय्या कर दिया तो उसको जिहाद

१ जेहाद (धर्मयुद्ध) करनेवाला।

का अज्र मिलेगा। और जिसने किसी ग़ाज़ी[1] की ग़ैबत में उसके घरवालों की ख़बर की तो उसको जिहाद का अज्र मिलेगा§। [बुख़ारी-मुस्लिम]

हज़्रत अबू सईद अलख़ुद्री (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक फ़ौज बनी हुदैल से बनी लह्यान की तरफ़ भेजी और फ़रमाया, जिस घर में दो आदमी हों तो एक फ़ौज में शरीक हो। अज्र दोनों को मिलेगा। [मुस्लिम]

१२६६ बच्चा के हज से माँ को सवाब

हज़्रत इब्नि अब्बास (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम रौहा में कुछ सवारों से मिले और पूछा तुम कौन हो ? कहा हम मुसलमान हैं। और फिर पूछा आप कौन हैं, आपने फ़रमाया मैं अल्लाह का रसूल हूँ। यह सुनकर एक औरत ने आपकी तरफ़ बच्चा को बढ़ाया और कहा या रसूलल्लाह! इसके लिए हज हो सकता है? आपने फ़रमाया, हाँ, मगर सवाब तुमको मिलेगा। [मुस्लिम]

१२६७ ख़ज़ांची का हुक्म पर ख़ुशी से अ़मल करना भी एक सदक़ः है

हज़्रत अबू मूसा (र०) अश्अ़री से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, मुसलमान अमानतदार ख़ज़ांची हुक्म पर पूरा-पूरा अमल-दरामद करे, और ख़ुशदिली के साथ उसको दे जिसके लिए हुक्म मिला है। वह भी एक तरह का (गोया अपने पास से) सदक़ः करने वाला है। [बुख़ारी-मुस्लिम]

आम ख़ैरख़्वाही[2]

आयात

अिन्न मल्मुअ्मिनून अिख़्वतुन्...

मुसलमान भाई-भाई हैं। [सू० हुजुराति, रु०१ आ० १०]

---

§ इस फ़ज़ीलत और सवाब से अक्सर लोग ग़ाफ़िल हैं। अगर कोई राहे ख़ुदा जिहाद, हज, तब्लीग़, तलबे अिल्म में घर से बाहर हो तो उसके घरवालों की ख़बरगीरी से आदमी घर बैठे शरीके-अज्र[3] हो सकता है।

---

१ धर्मयोद्धा २ मंगलकामना, शुभाकांक्षा ३ सवाब का भागीदार।

···व अन्सहु लकुम्···

(हज़्रत नूह अ० फ़रमाते हैं) मैं तुम्हारे साथ ख़ैरख़्वाही करता हूँ।
[सू० अऽराफ़ि रु० ८ आ० ६२]

···व अना लकुम् नासिहुन् अमीनुन्···

(हज़्रत हूद अ० फ़रमाते हैं) मैं तुम्हारे लिये ख़ैरख़्वाह अमानतदार हूँ। [सू० अऽराफ़ि, रु० ६ आ० ६८]

अहादीस

१९८ दीन ख़ैरख़्वाही का नाम है

हज़्रत अबू रुक़य्य: (र०) बिन तमीम अद्दारी से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, दीन ख़ैरख़्वाही का नाम है। हमने पूछा किसके लिए ? फ़रमाया अल्लाह के लिए, उसकी किताब के लिए, उसके रसूल के लिए, मुसलमानों के अमीर के लिए और आम मुसलमानों के लिए। [मुस्लिम]

१९९ ख़ैरख़्वाही पर बैअत[1]

हज़्रत जरीर (र०) बिन अब्दुल्लाह से रिवायत है कि हमने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से इस बात पर बैअत की कि हम नमाज़ पढ़ेंगे, ज़कात देंगे, और मुसलमानों की ख़ैरख़्वाही करेंगे।
[बुख़ारी, मुस्लिम]

२०० ईमान की एक शर्त

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्०) ने फ़रमाया, मोमिन वह है जो अपने भाई के लिए वही चाहे जो अपने लिए चाहता है। [बुख़ारी-मुस्लिम]

१ मुरीद होना, प्रतिज्ञाबद्ध होना।

नेकी का हुक्म और बुराई की मुमानिअत

आयात

वल् तकुम्मिन्कुम् अुम्मतुँय्यद्अून अिलल्ख़ैरि व यअ्मुरून बिल्मऽरूफ़ि व यन्हौन अनिल्मुन्करि ॥ व अुलाअिक हुमुल्मुफ़्लिहून ।

तुम में एक ऐसी जमाअत हो जो भलाई की तरफ़ लोगों को बुलायें, नेकी का हुक्म दें और बुराई से रोकें, वही लोग फ़लाह पाने वाले हैं ।

[सू० आलि अिम्रान, रु० ११ आ० १०४]

कुन्तुम् ख़ैर अुम्मतिन् अुख़्रिजत् लिन्नासि . तअ्मुरून बिल्मऽरूफ़ि व तन्हौन अनिल्मुन्करि···

तुम एक बेहतरीन उम्मत हो, लोगों के लिए पैदा किये गये हो, नेकी का हुक्म देते हो और बुराई से बाज़ रखते हो,

[सू० आलि अिम्रान, रु० १२ आ० ११०]

ख़ुज़िल्अफ़्व वअ्मुर् बिल्अुर्फ़ि व अऽरिज़् अनिल्जाहिलीन

मुआफ़ी इख़्तियार करो, नेकी का हुक्म दो और जाहिलों से इऽराज़[1] करो ।

[सू० अऽराफ़ि, रु० २४ आ० ११६]

वल्मुअ्मिनून वल्मुअ्मिनातु वऽज़ुहुम् औलियाअु बऽज़िन् ॥ यअ्मुरून बिल्मऽरूफ़ि व यन्हौन अनिल्मुन्करि···

मुसलमान मर्द और मुसलमान औरतें एक दूसरे की दोस्त हैं; नेकी का हुक्म देते हैं और बुराई से रोकते हैं । [सू० तौब:, रु० ६ आ० ७१]

लुअिनल्लज़ीन कफ़रू मिम्बनी अिस्राअील अला लिसानि दावूद व अीसब्नि मर्यम ॥ ज़ालिक बिमा असव्व कानू यऽतदून (७८) कानू ला यतना हौन अम्मुनकरिन् फ़अलूहु ॥ लबिअ्स मा कानू यफ़्अलून ।

---

१ विमुख रहो ।

बनी इसराईल के उन लोगों पर लानत की गयी जिन्होंने कुफ़्र किया हज़्रत दावूद (अ०) और हज़्रत ओ़ीसा (अ०) की ज़बान पर। बसबब इस बात के कि वह नाफ़रमानी करते थे और वह हद से बढ़ने वाले थे। एक दूसरे को उस बुराई से नहीं रोकते थे जो वह करने लगते। बहुत बुरी बात थी जो वह करते थे। [सू० माअिद:, रु० ११ आ० ७८-७९]

व क़ुलिल्ह़क़्क़ु मिर्रब्बिकुम् क़िफ़ फ़मन् शा'अ फ़ल्युअ्मिव्व मन् शा'अ फ़ल्यक्फ़ुर् ला...

कह दो कि हक़ तुम्हारे रब की तरफ़ से है। जो चाहे ईमान लाये और जो चाहे कुफ़्र करे। [सू० कह्फ़ि, रु० ४ आ० २९]

फ़स्दऽ बिमातुअ्मरु...

साफ़ कह दो जिसका तुमको हुक्म दिया गया है।

[सू० ह़िज्रि, रु० ६ आ० ९४]

...अन्जैनल्लज़ीन यन्हौन अनिस्सू'अि व अख़ज़्नल्लज़ीन ज़लमू बिअज़ाबिम्बओसिम्बिमा कानू यफ़्सुक़ून

हमने उन लोगों को नजात दी जो बुराई से बाज़ रखते थे। और जिन्होंने ज़ुल्म किया उनको हमने दर्दनाक अ़ज़ाब में मुब्तला किया, बसबब इसके कि वह फ़िस्क़[1] करते थे।

[सू० अऽराफ़ि रु० २१ आ० १६५]

अहादीस

नह्य१ बुराई कैसे रोकी जाये

हज़्रत अबू सओ़ीद (र०) अल्ख़ुद्री से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से फ़रमाते सुना कि अगर तुम किसी को बुराई करते देखो तो अपने हाथ से रोको, अगर न रोक सको तो ज़बान से मना करो, और अगर ज़बान से भी न रोक सको तो अपने दिल में बुरा समझो; और यह ईमान का कमज़ोर-तरीन[2] दर्जा है। [मुस्लिम]

---

१ दुराचार, दुष्कर्म, गुनाह २ दुर्बलतम, सबसे कमज़ोर।

१७२ बेअ़मलों[1] और बदअ़मलों[2] से जिहाद[3]

हज़्रत इब्नि मस्ऊ़द (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला ने हर नबी की उम्मत में हवारिय्यीन[4] और असहाब[5] पैदा किये, वह उनकी सुन्नतों को इख़्तियार करते थे[6] और उनके हुक्म की इक़्तिदा[7] करते थे, फिर पीछे आने वाले उनके जानशीन[8] हुए, वह कहते सब थे और अ़मल कुछ न करते थे, और करते वह थे जिसका हुक्म नहीं दिया गया। पस जो उनसे अपने हाथ से लड़े वह मोमिन है जो अपनी ज़बान से लड़े वह मोमिन है और जो अपने दिल से लड़े वह मोमिन है। इसके अलावा ईमान का एक ज़र्रः नहीं। [मुस्लिम]

१७३ हक़ बात कहना और मलामत[9] की परवाह न करना

हज़्रत अ़बादः (र०) बिन सामित से रिवायत है कि हमने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से बैअ़त की कि हम सुनेंगे और मानेंगे। तंगी में, आसानी में, राहत में और तकलीफ़ में; ख़्वाह हम पर बेइन्साफ़ी की जाये या ख़ुदग़र्ज़ी और नीज़ इस बात पर कि हम हुकूमत में अह्लॅ हुकूमत से न लड़ें‡ जब तक खुला हुआ कुफ़्र न देखें, या अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से इसके बारे में कोई दलील हो और इस पर कि हक़ बात कहें जहाँ भी हों और अल्लाह के बारे में मलामत[9] करने वालों से न डरें। [बुख़ारी-मुस्लिम]

१७४ अगर बुरी बात की रोक-थाम न की गयी तो आम मुसीबत आ जायेगी

हज़्रत नुअ़मान बिन बशीर (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि अल्लाह की मना की हुई चीज़ों से रुकने वाले की और उसका इर्तिकाब[10] करने वाले की मिसाल ऐसी है कि कुछ लोगों ने एक कश्ती[11] पर क़ुरअ़:[12] डाला तो उनके कुछ लोग ऊपर के हिस्से में रहे और बाज़ नीचे के हिस्से में। नीचे वाले ऊपर पानी लेने जाते और ऊपर वालों के पास से गुज़रते तो वह बहुत ख़फ़ा होते थे। नीचे वालों ने कहा कि हम अपने नीचे के हिस्से में सूराख़ कर लेंगे तो फिर ऊपर वालों को तकलीफ़ न होगी। अगर ऊपर वाले

---

१ अकर्मियों २ दुष्कर्मियों ३ धर्मयुद्ध ४ समीपी ५ सहयोगी ६ पदचिह्नों पर चलते थे ७ अनुकरण, पैरवी ८ उत्तराधिकारी ९ भर्त्सना १० पाप की शुरुआत करना ११ नाव १२ लाटरी, चिट्ठी।

---

‡ मुसलमान-अहलॅ हुकूमत के मुतअ़ल्लिक यह हुक्म है।

उनको उनके इरादे से बाज़ न रक्खेंगे तो सबके सब हलाक हो जायेंगे और अगर उनके हाथों को पकड़ लिया तो सब निजात पा जायेंगे@। (ब)

१७८ बुरी बात की ना-पसन्ददीदगी[1] और इन्कार[2]

हज़्रत उम्मुल्मोमिनीन उम्मे सलमः (र०) से रिवायत है कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, तुम पर उमरा हाकिम बनाये जायेंगे। इनकी बाज़ चीज़ों को पसन्द करोगे और बाज़ को नापसन्द करोगे। सो जिसने नापसन्द किया वह बरी हुआ, जिसने इन्कार किया वह बच गया, लेकिन जो राज़ी हुआ और उनका शरीक हो गया (वह ख़तरे में है।) उन्होंने कहा, या रसूलुल्लाह ! हम उनसे लड़ें। आपने फ़रमाया, नहीं, जब तक वह तुम में नमाज़ क़ायम करें। [मुस्लिम]

१७९ बुराई के बढ़ जाने पर अज़ाब

हज़्रत उम्मुलमोमिनीन ज़ैनब (र०) बिन जहश से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम घबराये हुए तश्रीफ़ लाये और ज़बाने मुबारक से यह फ़रमा रहे थे, 'लाइलाह इल्लल्लाहु। अल्लाह के सिवा कोई मअ़बूद नहीं)' उस बुराई से जो क़रीब आ गयी है अ़रब के लिये ख़राबी है। याजूज-माजूज का पुश्तः[3] आज खोल दिया गया। फिर अपने अँगूठे और कलमा की उँग्ली मिलाकर बताया कि इस तरह। मैंने कहा या रसूलल्लाह ! क्या हम हलाक कर दिये जायेंगे हालाँकि हम में नेक बन्दे भी हैं। आपने फ़रमाया, हाँ, जब बुराई बहुत बढ़ जायेगी।

[बुख़ारी-मुस्लिम]

१८० रास्तः का हक़

हज़्रत अबू सईद (र०) ख़ुद्री से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, तुम रास्ते में बैठने से बचो। लोगों ने कहा, या रसूलल्लाह ! ये (मजलिसें) तो हमारे लिए ज़रूरी हैं। आपने फ़रमाया, अगर तुम्हारे लिए यह मजलिसें ज़रूरी हैं तो रास्तः को उसका हक़ दो। उन्होंने कहा, रास्तः का क्या हक है ? आपने फ़रमाया,

---

@ इसी तरह अगर ख़ुदा की मना की हुई चीज़ों से न रोका गया और करनेवालों का हाथ न पकड़ा गया तो आम अ़ज़ाब या बदइख़्लाक़ी और फ़साद की आम वबा आजायेगी। और इससे वह भी न बचेंगे जो अलग थे, रोक-थाम नहीं करते थे।

---

१ अरुचि २ अस्वीकृति, न मानना ३ रोकने का बन्धन

निगाहें नीची रखना, तकलीफ़दिह चीज़ को रास्ते से हटा देना, सलाम का जवाब देना, नेकी का हुक्म देना और बुराई से मना करना।

[बुख़ारी-मुस्लिम]

१७८ आँ हज़्रत (सल्०) का ख़िलाफ़ॅशरअ[1] काम न देख सकना

हज़्रत इब्नि अब्बास (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सोने की अँगूठी एक आदमी के हाथ में देखी तो उसको उँगली से निकाल कर फेंक दिया, और फ़रमाया, बाज़ लोग इरादतन[2] आग के अंगारे अपने हाथ में रखते हैं। आँ हज़्रत (सल्०) के जाने के बाद लोगों ने उस शख़्स से कहा कि अपनी अँगूठी ले और इससे दूसरे फ़ायदे उठा। कहा क़सम ख़ुदा की मैं इसको कभी नहीं ले सकता। हुज़ूर (सल्०) तो इसे फेंक चुके हैं।

१७९ ज़ालिम हाकिम को नसीहत

हज़्रत हसन बसरी (र०) से रिवायत है कि आ़इज़ इब्नि अ़मर (र०) अ़ुबैदुल्लाह बिन ज़्याद के पास आये और कहा, ऐ अ़ज़ीज़, मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना है, फ़रमाते थे कि बुरे हाकिम वह ज़ालिम हैं जो लोगों को पाएमाल[3] कर दें। पस तुम इससे बचो, ऐसा न हो कि तुम भी उनमें से हो। अ़ुबैदुल्लाह (र०) ने कहा बैठिए भी, आप तो सहाबा के चोकर हैं। कहा क्या उनका भी चोकर था। चोकर तो उनके बाद हुआ है और दूसरों में है।× [मुस्लिम]

१८० बुराई से न रोकने का वबाल

हज़्रत हुज़ैफ़ः (र०) से रिवायत है कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, उसकी क़सम जिसके क़ब्ज़ः में मेरी जान है, तुम ज़रूर नेकी का हुक्म दो और बुराई से रोको। वरना क़रीब है कि अल्लाह तआ़ला तुम पर अज़ाब भेजे और फिर तुम उसको पुकारो और वह तुम्हारी पुकार न सुने (तिर्मिज़ी)

---

१ शास्त्र-असम्मत २ जानबूझकर ३ पैरों से रौंद दे।

× यानी वह तो सब ख़ालिस और मुन्तख़ब (चुने हुए) लोग थे।

बिभा करुछन्ति ताङ्कु होइ पुरोहित ।
बड़ अभिमान पाइ रवि पुरुहूत । ४५ ।

सरलार्थ—ब्रह्मा ने मुनि से पूछा, "इस कन्या के लिए आप क्यों नहीं गये ?" यह सुनकर गौतम ब्रह्मा के चारों ओर घूम कर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। (इससे गौतमजी का ब्रह्मगर्भ-स्थित भूमण्डल-पर्यटन सूचित हुआ।) अनन्तर जब ब्रह्मा स्वयं पुरोहित बनकर गौतम तथा उस कन्या अहल्या का विवाह-कार्य संपादन कराने लगे कि उसी समय इन्द्र तथा सूर्य पृथिवी की परिक्रमा करके लौट आये। यह विवाहकार्य देखकर उन्हें अपना बड़ा अपमान प्रतीत हुआ। (४४-४५)

किम्पा—क्यों, किसलिए; रवि—सूर्य; पुरुहूत—इन्द्र। (४४-४५)

ब्राह्मण जाया हेबारु तपन निवर्त्ति ।
बिरहि सेहि विषये महेन्द्र प्रवर्त्ति । ४६ ।
बशीकरण मन्त्रकु से दिनु जपिले ।
बाञ्छावट तळे रामासंग मनासिले । ४७ ।

सरलार्थ—उस रमणी के एक ब्राह्मण की पत्नी हो जाने से सूर्य अपनी नीच अभिलाषा से निवृत्त रहे। परन्तु इन्द्र कामविकार-वश अहल्या के विरह से विकल हो गये। उसकी सम्भोग-आशा हृदय में धारण करके वे प्रयागस्थ वाञ्छावट के नीचे 'वशीकरण' मन्त्र जपने लगे। (४६-४७)

बसन्त कोकिळ, अनङ्गकु उच्चाटने ।
बरगिले अति यत्न करि एहि बने । ४८ ।

सरलार्थ—अहल्या की उत्कण्ठा बढ़ाने के लिए इन्द्र ने वसन्त ऋतु, कोयल तथा कन्दर्प को बड़े यत्न के साथ इस काम्यक वन में भेजा। (४८)

उच्चाटने—उत्कण्ठा के लिए; बरगिले—भेजा। (४८)

बाड़बेयठारु पालटाइ मनोहर ।
बक्त्रविकारकु मात्र करिण अन्तर । ४९ ।

सरलार्थ—इन्द्र ने अश्विनकुमारों से उनके समूचे अंग-प्रत्यंगों की शोभा लाकर अपने शरीर में धारण की। (उनका मुख घोड़े का सा होने के कारण) केवल मुख की विकृति का इन्द्र ने परित्याग किया था। (४९)

बाड़बेय—अश्विनकुमार; बक्त्रविकार—मुखविकृति। (४९)

बिनति एकान्ते देखि ग्रेते भावे हेले ।
बिसम्मति सम्मतिकि किछि न जाणिले । ५० ।

सरलार्थ–अहल्या को एकान्त में देखकर इन्द्र ने कितने ही प्रकार से, उसकी विनती की । परन्तु उसकी सम्मति या असम्मति, कुछ भी नहीं जान सके । (५०)

बरबेश बहि रसे मानस उल्लासुँ ।
बृषदंश रूपे पळायित ऋषि आसुँ । ५१ ।

सरलार्थ–अन्त में इन्द्र अहल्या के पति (गौतम) का वेश धारण करके श्रृंगाररस में उसका मन उल्लसित करने लगे । इसी समय गौतम मुनि तपस्या से लौटे । उन्हें देखकर इन्द्र बिड़ाल रूप धरकर भाग गये । (५१)

वृषदंश—बिड़ाल, बिल्ला । (५१)

बळपर विनयी गौतम पचारन्ते ।
बिग्रहे सहस्रभग बह लिंग हते । ५२ ।

सरलार्थ–ध्यानबल से गौतम ने यह घटना जान ली और इन्द्र से इसके बारे में पूछा, तो इन्द्र ने बड़ी विनय प्रकाश की । तब मुनि ने सक्रोध शाप दिया, "तुम्हारा लिंग भग्न हो और तुम अपने शरीर पर सहस्र योनियाँ धारण करो" । (५२)

बळपर—इन्द्र; विग्रह—देह, शरीर । (५२)

बोलि रसाण हेमाङ्गी पाषाण कराइ ।
विश्वम्भरा-धर-राजे बास कले ग्राइ । ५३ ।

सरलार्थ–इन्द्र को ऐसा शाप देकर ऋषि विशुद्ध स्वर्णवर्णा अहल्या को पत्थर बना कर चले गये और जाकर हिमालय पर्वत में वास करने लगे । (५३)

रसाण—शाणित, कसे हुए, विशुद्ध; हेमांगी—स्वर्ण के समान गोरे शरीर वाली; विश्वम्भरा-धर-राजे—(विश्वम्भरा—पृथिवी, भू; भूधर—पर्वत; पर्वतों में राजा)—हिमालय पर्वत में । (५३)

बाजि तव पद-गति लभिला सुगति ।
बन्दिला श्रीरामे शुणि से मुनि भारती । ५४ ।

सरलार्थ–तुम्हारे चरण की रज के स्पर्श से उसी अहल्या ने अभी

परमगति (अर्थात् पाषाणत्व से मुक्ति) पाप्त की।" विश्वामित्र की यह बात सुनकर अहल्या ने श्रीराम को साक्षात् विष्णु समझकर उन की बन्दना की। (५४)

भारती—कथा, बात। (५४)

बन्दित पतिरे होइ उदित सेनेही।
विश्वामित्र पुणि हस हस होइ कहि। ५५।
विश्वमोही कन्या ए देखिले य़ेड़े रम्य।
विदेह देशे धरारु सुन्दरी ए जन्म। ५६।
विज्ञ बिहि थिला शिळा एहाकु कराइ।
बितर्कि ए सीतार चरणघषा एहि। ५७।

सरलार्थ—अनन्तर अपने वन्दनीय पति गौतम के प्रति अहल्या के मन में स्नेह का उदय हुआ। अर्थात् अहल्या गौतम के पास जाने को उत्सुक हुई और वहाँ गई। इसके बाद विश्वामित्र ने हँसते हुए फिर राम से कहा, "इस जगत्मोहिनी कन्या को तुमने जितनी सुन्दर देखा, उससे कहीं अधिक सुन्दर एक कन्या ने मिथिला में जन्म लिया है। विशेषकर ज्ञानी विधाता ने यह अनुभव करके कि सीताजी को एक पैर साफ करने वाला पत्थर चाहिए, अहल्या को पत्थर बनवाया था। अर्थात् यह अहल्या सीताजी के पैर साफ करने वाले पत्थर बनने के योग्य है। (५५-५६-५७)

पुणि—फिर; य़ेड़े—जितनी; रम्य—सुन्दर; बितर्कि—यह तर्क या अनुभव करके; चरणघषा—एक पत्थर जिस पर नहाते समय पैर घिसते हैं। (५५-५६-५७)

बर समे सुषमे जगते नाहिँ य़ेणु।
ब्योमकेश-धनुभग्न स्वयम्बर तेणु। ५८।

सरलार्थ—चूँकि उस कन्या की शोभा के अनुरूप वर जगत् में नहीं मिलता, इसलिए शिवधनुर्भंग-प्रण में उसका स्वयंवर स्थिर किया गया है। अर्थात् जो शिवधनु तोड़ेगा, वही सीताजी से विवाह करेगा। (५८)

सुषमें—शोभा में; य़ेणु—चूँकि; ब्योमकेश—शिवजी; तेणु—इसलिए। (५८)

वीरधू प्रकाश तव हेउ अतिशये।
बल्लभ हुअ ता य़ाग रक्षा फळोदये। ५९।

सरलार्थ—विश्वामित्र ने रामचन्द्र को आशीर्वाद देते हुए कहा,

"तुम्हारी वीरता भली-भाँति प्रकाशित हो (सुबाहु, मारीच आदि राक्षसों का वध करने से जो वीरता जानी गई है, धनुर्भंग से वह अधिकतर प्रकाशित होगी।) हम लोगों की याग-रक्षा करने के फलस्वरूप तुम सीताजी के पति बनो"। (५९)

वीरधू—वीरता। (५९)

विभाकरवंशी बोले अछि परम्परा।
ब्रह्माण्ड-सार-सुन्दरी रम्भा अपसरा। ६०।

सरलार्थ—विश्वामित्र की बात सुनकर रामचन्द्र ने कहा, "पहले से तो यह प्रसिद्ध है कि रम्भा अप्सरा ब्रह्माण्ड में [सर्व-] श्रेष्ठ सुन्दरी है। [सीता क्या उससे बढ़कर सुन्दरी हैं ?] (६०)

विभाकरवंशी—सूर्यवंशीय रामचन्द्र। (६०)

बिभाति ज्योतिरिंगण रात्रे देखाइ।
बिलुप्त प्रभात प्रभा ग्रेमन्त करइ। ६१।

बैदेही जातरु रम्भा तथा कहे ऋषि।
बाषठि पदे ए छान्द उपइन्द्र भाषि। ६२।

सरलार्थ—ऋषि ने कहा "जुगनू रात में अपना-अपना तेज दिखाते हैं। परन्तु प्रभात आकर उनकी प्रभा का विलोप कर देता है। सीता के आविर्भूत होने पर रम्भा की प्रभा वैसे ही विलुप्त हो गई है। उपेन्द्रभञ्ज ने बासठ पदों में इस छान्द की रचना की। (६१-६२)

बिभाति—प्रभा; ज्योतिरिंगण—जुगनू। (६१-६२)

॥ इति सप्तम छान्द ॥

अष्टम छान्द

राग—काळी

विजयी-वीर ! विजय कर ग्रिबा मिथिळापुर ।
बाहार होइ विहार तहिँ करन्ति मुनिवर ।
बइदेही ग्रे सुन्दरीव्रजे अमूल्य चूड़ामणि ।
बर्त्तमान से भूत भविष्ये नाहिँ नोहिब पुणि । १ ।

सरलार्थ—"हे विजयी वीर रामचन्द्र ! चलें, मिथिलापुर के लिए प्रस्थान करें", यह कहकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने आगे निकल पथ पर पदार्पण किया । (विश्वामित्र आगे-आगे बढ़ने लगे और श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मण पीछे चले) । रास्ते पर विश्वामित्र ने कहा, "सीता संसार भर की सुन्दरियों में अमूल्य शिरोमणि हैं । उनके सदृश सुन्दरी वर्त्तमान काल में वे ही हैं, किन्तु अतीत में कोई नहीं थी और न भविष्य में होगी ही" । (१)

विजय कर—रवाना करो; सुन्दरी-व्रजे—सुन्दरी-समूह में; चूड़ामणि—शिरोमणि; नोहिब—नहीं होगी । (१)

बशीकरण मूर्त्तिधारण उच्चाटन ता चारु ।
विधिसुन्दरी से पुरन्दरी ताहाकु बोलिबारु ।
बिहिला विहि प्रभा ए काहिँ शोभासंग्रह पाइ ।
बणा विवेक पण्डित लोकमानङ्कु करि देइ । २ ।

सरलार्थ—उन सीता ने वशीकरण मन्त्र की मूर्त्ति का रूप धारण किया है । (अर्थात् उन्हें देखते ही कोई भी मनुष्य उनके वशीभूत हो जाएगा ।) फिर उनका मनोहर रूप देखकर सब कोई मुग्ध होते हैं । विधाता द्वारा निर्मित सुन्दरियों में वे सर्वश्रेष्ठ हैं । विधाता ने किन-किन शोभाओं से उपादान (सामग्री) का संग्रह करके ऐसे एक मनोहर रूप का निर्माण किया ? यह पण्डित लोग निर्णय नहीं कर पाते । यह प्रश्न उनके विवेक को चक्कर में डाल रहा है । (२)

वशीकरण मन्त्र—जिस मन्त्र के जप से सब वशीभूत होते हैं; उच्चाटन—मुग्ध होना; ता चारु—उनका मनोहर रूप; सुन्दरी-पुरन्दरी—सुन्दरी-श्रेष्ठा; बणा—पथ-भ्रष्ट । (२)

बिग्रहकान्ति कि झटकन्ति कनक अनाइला ।
बान बढ़ाइ अग्निरे दहि शिळे कषाइ हेला ।
बणिक श्रेणी असम जाणि हेले प्रहारदानी ।
बसाइ तुले रतिए बोले तेतिकि लक्ष्य घेनि । ३ ।

सरलार्थ–उनके शरीर की अनिर्वचनीय चमकीली शोभा को देखकर सुवर्ण ने (मैं ऐसा होऊँगा—यह अभिलाषा करके) अपनी कान्ति बढ़ाने के उद्देश्य से अग्नि में अपने शरीर को जलाया, फिर कसौटी के पत्थर पर अपने को कसाया। तिस पर भी सुवर्ण को सीता के शरीर की कान्ति से असमान देखकर सोनारों ने उसे पीटा। तराजू पर सोने को रखकर उन्होंने वजन किया और यह निर्णय (लक्ष्य) किया कि सोना रत्ती भर है। (सीता की कान्ति की तुलना में सुवर्ण की कान्ति रत्ती भर अर्थात् रंचमात्र है)। (३)

बिग्रहकान्ति—शरीर की शोभा; कि झटकन्ति—क्या ही चमकीली है ? ; कनक—सोना; अनाइला—देखा; बान—कान्ति; बणिक श्रेणी—सोनार सब; बसाइ—बैठाकर, रखकर; तुले—तराजू पर। (३)

बिचिरज्योति लभि से भीति विद्यु लक्षण एते ।
बुजि ईक्षण होए तक्षण याहा दर्शन मात्रे ।
बड़ाइ हीन कण्टकपर्ण्ण मध्यरे दरे लुचि ।
बाससमेळ केतकी फुल केते मनकु रुचि । ४ ।

सरलार्थ–बिजली की ज्योति क्षणिक है और उसकी ओर देखने से आँखें मुँद जाती हैं। ये बिजली के स्वाभाविक लक्षण हैं। परन्तु सीता की देह-कान्ति चिरस्थायी है और उसकी ओर बिना कठिनाई के हम देख सकते हैं। सुतरां कवि उत्प्रेक्षा कर रहे हैं कि बिजली की कान्ति सीता की देह-कान्ति के समान न हो सकने के कारण मानो केवल एक झलक दिखलाकर भय से एकाएक ओझल हो जाती है। और केतकी की कान्ति तथा सुगन्ध ने सीता की देहकान्ति तथा सौरभ से असमान होने के कारण भय से कंटीले पत्तों में अपने को छुपाया है। (केतकी के फूल कांटों में खिलते हैं)। (४)

विचिरज्योति—क्षणिक प्रभा है जिसकी, बिजली; ईक्षण—चक्षु; दरे—भय से; लुचि—छिपा। (४)

बाह्लीक चूर्ण्ण करि सेवन मनकु मनाइला ।
बरवर्ण्णना जगद्वन्दना एणु कि बोलाइला ?
बरवर्ण्णना कविरोचना बोलाइ तर्क होए ।
बिलक्ष स्मरप्रियाटि स्मर रति नामकु पाए । ५ ।

सरलार्थ—वरर्वाणिनी सीता अपने शरीर को कुंकुम-चूर्ण से विलेपित करती थीं । यह देखकर कवि उत्प्रेक्षा कर रहे हैं मानो कुंकुम-चूर्ण ने सीता की कान्ति के समान होने के उद्देश्य से विलेपन के मिस उनकी सेवा करके उन्हें सन्तुष्ट किया । और इसी हेतु जगद्-वन्दनीया सीता मानो वरवर्णना (श्रेष्ठवर्णा, कुंकुम-वर्णा) कहलाने लगीं । उन्हें वरवर्णा कहकर भी कवि को सन्तोष नहीं होता है । वे फिर मन में तर्क कर रहे हैं, "जिनके सौन्दर्य के तुल्य न होकर कन्दर्प की पत्नी ने 'रति' (रती-थोड़ा) आख्या (नाम) प्राप्त की है—ऐसा प्रतीत होता है—उन सीता को वरवर्णना कहने में कौन सी बड़ाई है ?" अर्थात् 'वरवर्णना'—इस विशेषण के प्रयोग से सीता के सौन्दर्य की अधिकता सूचित नहीं होती । (५)

बाह्लीकचूर्ण—कुंकुम (रोली) का चना; एणु कि—इसीलिए क्या ?; बोलाइला—कहलाईं; स्मर (१) प्रिया—कन्दर्प की पत्नी; रति—कन्दर्प की पत्नी का नाम, जरा-सा (रत्ती) (श्लेष); स्मर (२) स्मरण करो (यमक) । (५)

बिहुँ समुद्र-मन्थनु चन्द्र जनम ग्रेउँ काळे ।
बिहीन क्षीण कळङ्के जाण निर्मळ होइथिले ।
बदने जानकीर समान मन जाणिटि बिहि ।
बिम्ब-वेष्टन नोहिला बर्ण्ण भाबेटि काटि देइ । ६ ।

सरलार्थ—देवासुरों के समुद्र-मन्थन के समय उससे चन्द्र का जन्म हुआ था । उस समय चन्द्र क्षीणता-विहीन (पूर्ण), कलंकहीन (निष्कलंक) तथा निर्मल था । तब चन्द्र ने सोचा, "मैं जानकी के मुखमण्डल के समान हूँ" । विधाता ने चन्द्र के इस अभिमान-भरे मनोभाव को समझ कर उसे मण्डलस्थ बना दिया मानो किसी ने भूल से लिखे हुए अक्षर को वृत्तांकित करके काट दिया हो और यह जता दिया हो कि तुम गलत हो । अर्थात् सीता का मुखमण्डल निष्कलंक पूर्णचन्द्र की शोभा को धिक्कारता है । (आखिर सकलंक और दिनोंदिन क्षीण होने वाले चन्द्रमा की उनके मुखमण्डल से बराबरी करना तो मूर्खता ही होगी ।) (६)

विहीन क्षीण कलंके—क्षीणता तथा कलंकविहीन, पूर्ण तथा निष्कलंक; विम्बवेष्टन—मण्डलावृत; नोहिला वर्ण—अशुद्ध या गलत अक्षर, (व्यतिरेक अलंकार) । (६)

बनज आदरश कि बाद रचि हुअन्ते ग्रोख ।
बिस्तारि आहा कि झळि आहालाद सुबास मुख ।
बिलोळ चळ सुधा-कल्लोळ लावण्य-सरितरे ।
बिकाश हास करइ दास हीराकु निरन्तरे । ७ ।

सरलार्थ—पद्म तथा दर्पण दोनों (परस्पर) वाद (होड़) करके सीता के मुख के समान होते तो भला ! (अर्थात् समान नहीं हो सके) । उनके वदन पर सौरभ तथा आह्लाद दो गुण झलकते हैं । फिर लावण्य-सरित में चंचल व लहराती हुई अमृतमय तरंगों की तरह मुखमण्डल का हास्य जो कि हीरे को दास बनाता है, शोभा में अनुपम है । (पद्म में केवल सौरभ और दर्पण में केवल आह्लाद गुण है । परन्तु सीता के मुख पर इन दोनों का एकत्र समावेश है । इसलिए वे दोनों सीता के मुख के तुल्य नहीं हैं) । (७)

बनज—पद्म; आदरश—दर्पण, आइना; विलोल—चञ्चल (व्यतिरेक) । (७)

बिधु बिधुर गर्भरु चूर पवित्र द्रव्य दर्भ ।
बिकशितरे से ईषतरे न लभिला सन्दर्भ ।
बिकशित ग्रे कुमुदपुञ्जे दिने संकोच बहि ।
बुड़णानीरे पड़ि लाजरे दृढ़ आयुषुँ जीइ । ८ ।

सरलार्थ—सीता के हास्य के समान न होकर अपनी श्वेतता का गर्व त्याग कर कर्पूर कातरता से चूर-चूर हो गया । पवित्र द्रव्य कुश अपने प्रस्फुटित फूलों सहित सीता की हास्य-परिपाटी के साथ लेशमात्र भी समानता न कर सका । कुमुदसमूह सीता की हास्य-छटा से एक दिन भी समान न हो सकने से लज्जित होकर मरने की इच्छा से पानी में डूबा । परन्तु आयुबल होने से न मरके बच गया । (सीतादेवी की हास्य-छटा कर्पूर, कुश-कुसुम और कुमुद की शोभा से भी बढ़ी-चढ़ी थी) । (८)

विधु—कर्पूर; विधुर—कातर; दर्भ—कुश; सन्दर्भ—श्रेष्ठता (यहाँ-पूर्णता); बुड़णा—डूबना (व्यतिरेक) । (८)

बिष्फारित ता लोचन गतागत करइ डोळा ।
बिलज्जभृंग सरोजे सङ्ग होइ शिखे से लीळा ।
बाते चळइ नीळोत्पळहिँ से छवि लक्ष्य हेजि ।
बाळककरे सरणी करे खेळा तरुण तेजि । ९ ।

जे कां अपेक्षित मानसीं । ९४ कैकयी आनंदली थोर । म्हणे-
मी जेव्हां मागेन वर । तेव्हां मज द्यावे साचार । म्हणोनि
भाष घेतली । ९५ महायुद्धीं जय पूर्ण । कैकयीस यावया
काय कारण । काय होतें तीस वरदान । तेंचि कारण ऐक
पां । ९६ पितृगृहीं कैकयी असतां । एक तापसी आला
अवचितां । तयासी प्रार्थोनियां माता । राहविती जाहली
कैकयीची । ९७ ऋषि बैसला अनुष्ठानातें । माता निरोपी
कैकयीतें । उपकरण सामग्री लागेल यातें । ती सिद्ध करोनि
देइंजे । ९८ पुष्पें धूप दीप आरती । सिद्ध करोनि देत ऋषी-
प्रती । येरू प्राणायाम करूनि निश्चितीं । ध्यानीं जाहला
निमग्न । ९९ तंव कैकयीनें घेऊनि मस । लाविली ऋषीच्या
मुखास । ध्यान जाहलिया तो महापुरुष । स्वमुख करें
पुसीतसे । १०० तों हस्तास लागलें काळें । कर्तृत्व कुमारीचें
कळलें । ऋषीनें शापिलें ते वेळे । वदन काळें तुझें हो कां । १०१
तुजवरी अपेश येईल प्रचंड । जगांत होईल काळें तोंड । पुत्रद्वेष

तब दशरथ ने नीचे उतरकर अपनी प्रिया का आलिंगन किया और कहा—तुम्हारे मन में जो अपेक्षित हों, ऐसे दो वरों को शीघ्र माँग लो।' ९४ कैकेयी बहुत हर्षविभोर हुई। वह बोली—'जब मैं वर माँग लूँगी, तब सचमुच आप मुझे दें।' ऐसा कहकर उसने (राजा से) वचन लिया। ९५

(इस) महायुद्ध में कैकेयी की पूर्ण जय किस कारण से हुई, उसे क्या वरदान (प्राप्त) था?—यह कारण सुनो। ९६ कैकेयी जब अपने पितृगृह में थी, तब अकस्मात (वहाँ) एक तापसी आ गया। उससे प्रार्थना करते हुए कैकेयी की माता ने उसे ठहराया (रहने को प्रेरित किया।) ९७ वह ऋषि (तापसी) अनुष्ठान के लिए बैठा तो माता ने कैकेयी को सन्देश भेजा कि इसे जो साधन-सामग्री लगेगी (आवश्यक हो), उसे तैयार करके दो। ९८ फूल, धूप, दीप, आरती—ये (सब) तैयार करके वह ऋषि को दे देती, तब वह ऋषि संकल्प पूर्वक प्राणायाम करके ध्यान-मग्न हो गया। ९९ तब कैकेयी ने काजल लेकर (उस) ऋषि के मुख में लगाया। जब (वह) महापुरुष सावधान हुआ तो उसने हाथ से अपना मुख पोंछ लिया। १०० तो हाथ में कालिमा लगी; इससे (उस) कुमारी की करतूत (उसे) मालूम हो गयी। तब ऋषि ने उस वक्त (कैकेयी को) अभिशाप दिया—'तेरा मुख काला हो जाएगा। १०१ तेरी प्रचण्ड अपकीर्ति होगी। संसार में तेरा मुँह काला हो जाएगा।

करिसील उदंड । नसतें बंड वाढविसी । १०२ मातेनें समाचार ऐकोन । वेगीं धरिले ऋषीचे चरण । स्वामी कैकयी बाळ अज्ञान । नेणोनि कर्म हें केलें । ३ कांहीं द्यावें जी वरदान । मग ऋषी कृपालु होऊन । म्हणे-संग्रामीं पतीलागून । जय देईल महारणीं । ४ पूजासामग्री दिधली समस्त । तरी हा हस्त होईल यशवंत । त्या वरें या समयीं अद्भुत । जय प्राप्त कैकयीतें । ५ असो इंद्र आणि बृहस्पती । दशरथाचें यश वानिती । वस्त्रें भूषणें अमरपती । देता जाहला रायातें । ६ वस्त्राभरणें अद्भुतें । दिव्यमणि दिधला कैकयीतें । येरीनें घातला वेणीतें । परम प्रकाशवंत जो । ७ तों देव-आचार्य बोले वचन । रायासी काय आहे पुत्रसंतान । दशरथ म्हणे पुत्रवदन । देखिलें नाहीं अद्यापि । ८ सुरगुरु म्हणे राया वरिष्ठा । त्रिभुवनपति येईल तुझिया पोटा । ज्याचें ध्यान लागलें नीलकंठा । सनकादिक भक्तांसी । ९ जो मायाचक्रचाळक ।

तू पुत्रों से बहुत द्वेष करेगी (और) निराधार (अकारण) विद्रोह (भाव) को बढ़ाएगी ।' १०२ (कैकेयी की) माता ने यह समाचार सुनकर शीघ्रता से (आकर) ऋषि के पाँव पकड़े (और कहा), 'महाराज, (यह) बालिका कैकेयी अज्ञान है । उसने अनजाने में यह काम किया । १०३ उसे कुछ वरदान दो ।' तब ऋषि ने (उसके प्रति) कृपालु होकर कहा— 'यह महायुद्ध में अपने पति को जय प्राप्त कराएगी । १०४ (कैकेयी के) इस (हाथ) ने पूजा की समस्त सामग्री दी, अतः यह हाथ कीर्तिशाली हो जाएगा ।' उस वरदान देनेवाले के कारण इस समय कैकेयी को अद्‌भुत जय प्राप्त हो गयी । १०५

अस्तु । इन्द्र और बृहस्पति ने दशरथ की सफलता की प्रशंसा की । इन्द्र ने राजा (दशरथ) को वस्त्र और आभूषण दिये । ६ वे वस्त्रालंकार अद्‌भुत थे । इन्द्र ने कैकेयी को (एक) दिव्य रत्न दिया जो अति प्रकाशवान था । उसने उसे वेणी (जूड़े) में सजाया । ७ तब देवगुरु (बृहस्पति) ने यह बात कही । उसने पूछा, 'राजा (दशरथ) के क्या पुत्र-सन्तान है ?' तो दशरथ ने कहा, 'अभी तक (मैंने) पुत्र-मुख नहीं देखा ।' ८ देवगुरु ने कहा, 'हे श्रेष्ठ राजा, जिसका ध्यान नीलकण्ठ शिवजी तथा सनकादिक भक्तों को लगा हुआ है, वही त्रिभुवनपति भगवान् तुम्हारे (उदर से) उत्पन्न होगा । ९ हे राजा, जो मायाचक्र का चालक है,

अनंत ब्रह्मांडांचा नायक। जो कमलोद्भवाचा जनक। तो
पुत्र देख तुझा राया। ११० जो वेदशास्त्रांचा जिव्हार। जो
आदिमायेचा निजवर। तो पुराणपुरुष अगोचर। तुझा पुत्र
होईल कीं। ११ विभांडकाचा पुत्र शृंगऋषी। हरिणीगर्भ-
संभूत तेजोराशी। त्यासी आणावें नाना सायासीं। पुत्रेष्टी
करावया। १२ त्यास नाहीं मनुष्यदर्शन। देखिलें नाहीं
स्त्रियांचें वदन। त्यास शब्दविषयें मोहून। करोनि गायन
आणावा। १३ शक्र म्हणे देवललना। पाठवाव्या तया वना।
रंभा उर्वशी शुभानना। ज्यांचे गायना मदन भुले। १४ दशरथ
इंद्रगुरूची आज्ञा। घेऊन आला अयोध्याभुवना। आनन्द
जाहला सकळ जना। पर्जन्यवृष्टि जाहली। १५ असंभाव्य
पिकली मेदिनी। दुष्काळ गेला मुळींहुनी। जैसीं विष्णुसहस्र-
नामें करूनी। महापापें संहारती। १६ इकडे वीणा टाळ
मृदंग। झल्लरी किंकिणी उपांग। देवांगना घेऊन उपभोग।

जो अनन्त ब्रह्माण्ड का नायक और कमलोद्भव ब्रह्माजी का पिता है तुम उसे अपने पुत्र रूप में देखो। ११० जो वेद-शास्त्रों का आत्मा है, जो आदि माया का अपना पति है, वह अगोचर पुराण-पुरुष है, तुम्हारा पुत्र होगा। ११ विभाण्डक ऋषि का शृंगी (ऋषि) नामक पुत्र है, जो हिरनी के गर्भ से उत्पन्न और तेज की राशि है। पुत्रेष्टि (नामक) यज्ञ (करने) के लिए उसे अनेक प्रकार के प्रयत्न करके ले आओ। १२ उसने (किसी) मनुष्य के दर्शन तक नहीं किये हैं, स्त्रियों के मुख तक को नहीं देखा है। उसे शब्द (ध्वनि) द्वारा मोहित करने के विचार से गायन करके लाएँ'। १३

(इसपर) इन्द्र ने कहा, 'जिनके गायन से कामदेव भी मोहित हो जाता है, ऐसी सुन्दर रम्भा, उर्वशी (आदि) अप्सराओं को उस वन में भेज दें।' १४

(इधर) दशरथ, इन्द्र और बृहस्पति की आज्ञा (से बिदा) लेकर अयोध्या के प्रासाद में आ गया। उससे सब लोगों को आनन्द हो गया। (तब) वर्षा हो गयी। १५ पृथ्वी (भूमि) ने असम्भवनीय रूप में फसल उत्पन्न की और जैसे विष्णुसहस्रनाम से महापापों का संहार हो जाता है, वैसे ही (देवों की विजय होने पर) अकाल पूर्णतः नष्ट हो गया। १६

इधर वीणा, करताल, मृदंग, झाँझ, (घंटिकाओं से युक्त) करधनी और छोटे-छोटे वाद्य तथा उपभोग (की सामग्री) लेकर अप्सराएँ तेज

वना सवेग चालिल्या। १७ विभांडक ऋषि तपोधन। नित्य उषःकाळीं उठोन। करावया अनुष्ठान। जान्हवीतीराप्रति जाय। १८ मागें आश्रमीं एकला पुत्र। उंच बांधोनियां गोपुर। त्यावरी श्रृंगी तो परम चतुर। वेदाध्ययन करीतसे। १९ गज व्याघ्र सावजें बहुत। देखतां होय भयभीत। म्हणोनि उंच स्थळ बांधोनि सत्य। त्यावरी सुत बैसविला। १२० विभांडक ऋषि अनुष्ठान करून। दोन प्रहरां येत परतोन। परमानंदें पुत्र देखोन। अध्ययन सांगे तयातें। २१ चारही वेद मुखोद्गत। सकल शास्त्रें पारंगत। यागविधि कर्में समस्त। करतलामलक तयातें। २२ असो विभांडक गेला स्नाना। तो समय पाहोन देवांगना। वेगीं पातल्या तया वना। सर्व संपत्ति घेऊनियां। २३ वरी बैसला ऋषिनंदन। तंव त्यांनीं आरंभिलें गायन। जें ऐकतां भुले पंचबाण। स्वरूपलावण्य तयांचें। २४ जैशा केवळ सौदामिनी। मंडित दिसती वस्त्राभरणीं। ज्यांचीं स्वरूपें पाहोनी। सुधापानी वेधले। २५

गति से वन की ओर चलीं। १७ हमेशा ऊषाकाल (सबेरे) में जाग उठकर तपोधन विभाण्डक ऋषि गंगा के तट पर अनुष्ठान करने के लिए जाया करता। १८ (इधर उसके चले जाने पर) पीछे आश्रम में अकेला पुत्र रहता। ऊँचा गोपुर बनाकर उसपर बैठकर वह परम चतुर श्रृंगी वेदों का अध्ययन किया करता। १९ हाथी, बाघ (जैसे) बहुत श्वापदों को देखकर वह भयभीत हो जाता; इसलिए ऋषि ने सचमुच ऊँचा स्थान बनाकर उसपर पुत्र को बैठाया। १२० अनुष्ठान करके जब दोपहर को विभाण्डक ऋषि लौटता, तो पुत्र को परम आनन्दपूर्वक देखकर उसे अध्ययन (का पाठ) बताता। २१ उसे (श्रृंगी को) चारों वेद मुखोद्गत (हो गये) थे। वह शास्त्रों में पारंगत (हो गया) था। यज्ञ विधि आदि कार्य उसे हथेली पर रखे आँवले की तरह अत्यन्त स्पष्ट (सुलझे हुए) हो गये। २२

अस्तु। विभाण्डक स्नान के लिए गया—यह अवसर देखकर अप्सराएँ समूची सम्पत्ति को लेकर तेज़ गति से उस वन में आ पहुँची। २३ (इधर) ऊपर ऋषि-पुत्र विराजमान था—इधर उन्होंने ऐसा गायन आरम्भ किया, जिसे सुनकर मदन भी लुब्ध हो जाए। उनका रूप-लावण्य ऐसा था कि (देखने पर जान पड़ता कि) सौदामिनियाँ (बिजलियाँ) ही वस्त्रों

टाळ मृदंग सुस्वर। गायन ऐकून ऋषिपुत्र। वरोनि पाहे सादर। स्वरूप सुन्दर न्याहाळोनी। २६ तंव नेत्रकटाक्ष हावभाव। दाविती नाना परींचें लाघव। श्रृंगीनें देखतांचि अपूर्व। भय वाटे मानसीं। २७ गायन ऐकतां सुस्वर। संतोष वाटे अपार। म्हणे मज धरावया साचार। पातले कोण न कळे हें। २८ भयेंकरून ते वेळां। श्रृंगी वायुवेगें पळाला। सवेंचि विलोकी परतोनि डोळां। सुंदर स्वरूप तयांचें। २९ विभांडक अनुष्ठान करून। आश्रमासी येत परतोन। देवांगना जाती तेथोन। शापभयें ऋषीच्या। १३० म्हणती-विभांडकासी कळेल। तरी आम्हां तत्काळ शापील। यालागीं दोन प्रहर होतां सकळ। जाती वेगेंकरूनियां। ३१ असो पिता आला आश्रमासी। श्रृंगी सांगे तयापाशीं। म्हणे-येथें आले होते तापसी। उपमा ज्यांसी असेना। ३२ मी तयांसी देखोनी। पळालों देहलोभेंकरूनी। आतां न येती ते दुसरेनी। खंती मनीं वाटतसे। ३३ विभांडक म्हणे पुत्रासी। जरी आश्रमा

और अलंकारों से विभूषित हुई हों। उनका रूप (सौन्दर्य) देखकर अमृत पान करनेवाले देव भी विद्ध (हृदय में घायल) हो गये। २४-२५

झाँझ, मृदंग और सुरीला गायन सुनकर ऋषि-पुत्र उनके सुन्दर रूप को ऊपर से आदरपूर्वक निरखकर देखता था। २६ तब वे नेत्र कटाक्ष, हावभाव और अनेक प्रकार के कौतुक दिखाने लगीं। (आज तक कभी नहीं देखी हुई, उन अद्‌भुत बातों को देखते ही श्रृंगी को मन में भय अनुभव हुआ। २७ (फिर भी) सुरीला गायन सुनकर उसे अपार सन्तोष अनुभव हुआ। उसने सोचा—मुझे सचमुच पकड़ने के लिए, न जाने ये कौन आये हैं ? २८ भय के कारण श्रृंगी उस समय वायु-वेग से भाग गया। (फिर भी) साथ ही मुड़कर आँखों से उनके सुन्दर रूप को देखता था। २९ अनुष्ठान करके विभाण्डक के आश्रम में लौटने का समय होते ही ऋषि के शाप के भय से अप्सराएँ निकल गयीं। १३० वे कहती हैं (सोचती हैं)—यदि विभाण्डक को यह ज्ञात हो जाए, तो वह तत्काल हमें शाप देगा। इसलिए दोपहर होते ही वे सब शीघ्रता से निकल गयीं। ३१

अस्तु। पिता (विभाण्डक) आश्रम में आया, तो श्रृंगी ने उससे कहा, 'यहाँ ऐसे तापसी आये थे, जिनकी कोई उपमा नहीं है। ३२ उन्हें देखकर मैं देह के लोभ से (अपने को बचाने के विचार से) भाग गया; लेकिन मन में खेद अनुभव होता है कि वे दुबारा नहीं आएँगे।' ३३ विभाण्डक

आले संत ऋषी। तरी आपण आतिथ्य करावें तयांसी। पूजाविधीकरूनियां। ३४ असो प्रातःकाळीं विभांडक मुनी। गेला अनुष्ठानालागुनी। शृंगी चिंता करी मनीं। म्हणे कधीं नयनीं देखेन तयां। ३५ विसरला लेखन पठन। ज्ञान ध्यान आणि मनन। लागलें मनीं स्त्रियांचें ध्यान। अनर्थ पूर्ण स्त्रीसंगें। ३६ ज्यानें स्त्री न देखिली स्वप्नीं। त्यानें ती विलोकितां नयनीं। गेला सर्व विसरोनी। अनर्थ कामिनी तपासी। ३७ मग ज्यांस अखंड स्त्रीचिंतन। ते कैसे तरतील जन। मूर्तिमंत भवाब्धि कामिन। भुलवी सज्जन जाणते। ३८ स्त्री केवळ अविद्येचा पसारा। महाअनृत्या अविचारा। सकळ असत्याचा थारा। भय न धरी पापाचें। ३९ स्त्री अनर्थाचें गृह सबळ। कीं कलहाचें महामूळ। कीं विषवल्लीच केवळ। स्त्रीरूपें विस्तारली। १४० स्त्री कामाची विशाळ दरी। कीं ते क्रोधव्याघ्राची जाळी खरी। कीं ते पापसमुद्रलहरी। कीं ते

ने पुत्र से कहा, 'यदि (कोई) सन्त, ऋषि आश्रम में आएँ तो हम पूजन आदि विधि से उनका आतिथ्य करें।' ३४

अस्तु। (दूसरे दिन) प्रभात काल में विभाण्डक ऋषि अनुष्ठान के लिए चला गया। (इधर) शृंगी मन में चिन्ता करता था कि मैं उन्हें आँखों से (फिर से) कब देखूँगा। ३५ वह लेखन, पठन, ज्ञान, ध्यान और मनन भूल गया। उसे मन में (उन) स्त्रियों का ही ध्यान लगा। स्त्रियों की संगति से पूर्ण रूप से अनर्थ होता है। ३६ जिस ने स्वप्न में (तक) स्त्री नहीं देखी थी, उसने उसे (प्रत्यक्ष) आँखों से देखा। इससे वह सब भूल गया। (इस प्रकार) कामिनी तप के लिए अनर्थ (आपत्ति) होती है। ३७ तो फिर जिनको अविरत स्त्रियों का चिन्तन होता है, वे लोग (संसार-सागर को) तैरकर कैसे (पार) जाएँगे? संसार सागर (ही) प्रत्यक्ष कामिनी है, जो ज्ञानी सज्जनों को मोहित करती है। ३८ स्त्री केवल अविद्या (अज्ञान) का ही विस्तार है। वह अति झूठी, अविवेकी होती है। वह असत्य का आश्रयस्थान है। वह पाप से भय नहीं मानती। ३९ स्त्री अनर्थ (संकट, नाश) का दृढ़ (मज़बूत) गृह है; अथवा वह कलह की महान जड़ है, अथवा केवल बिष-लता ही स्त्री में विस्तार को प्राप्त हुई है। १४० स्त्री काम (विषयों) की विशाल घाटी है; अथवा यह सचमुच क्रोध रूपी बाघ की (निवास करने की) झाड़ी है। अथवा वह पाप-समुद्र में उत्पन्न लहर है; अथवा असत्य का

भाजन असत्याचें । ४१ कीं ते दुःखवृक्षाचें श्रेष्ठ फळ । कीं ते मोहाचा पर्वत सबळ । कीं ते मत्सरवनचि केवळ । किंवा भ्रांति अवतरली । ४२ कीं दंभचि मूर्तिमंत विरूढला । कीं अहंकार स्त्रीगड बांधिला । कीं मूर्खत्व सकळ त्या स्थळा । मिरास करूनि राहिलें । ४३ कीं स्त्री मूर्तिमंत भवव्याधी । कीं षड्ूर्मींची भरली नदी । कीं सकळ विकारांची मांदी । यात्रेसी आली त्या ठाया । ४४ कवणें निर्मिली हे कुऱ्हाडी । सबळ पुण्यवृक्ष तोडी । कीं अविश्वासाची बेडी । जिवाच्या पायीं ठोकिली । ४५ कीं स्वर्गमोक्षअर्गळा सत्य । दर्शनें पुरुषाचें चित्त चोरित । स्पर्शबळें वीर्य हरीत । आसुरी प्रत्यक्ष कामिनी । ४६ कौटिल्यदंभसंयुक्त । क्षमाशौचविवर्जित । महामंत्राचें सामर्थ्य । क्षणें हरीत न कळेचि । ४७ गौडी माध्वी पैष्टी तीन्ही । मदिरा ऐशा प्रकट जनीं । चौथें मद्य ते कामिनी । दुर्गंधि नाहाणी पापाची । ४८ काय विद्या काय तप । कायसें

पात्र (भण्डा) है । ४१ अथवा वह दुःख रूपी वृक्ष का बड़ा फल है; अथवा वह मोह का प्रबल पर्वत है; अथवा वह मात्र मत्सर का वन है; अथवा भ्रान्ति (ही स्त्री रूप में) अवतरित है । ४२ अथवा उसके रूप में मूर्तिमान दम्भ ही विराजमान है, अथवा अहंकार ने स्त्री-रूप में गढ़ (किला) बनाया है; अथवा उस स्थान पर (स्त्री के रूप में) समस्त मूर्खत्व स्थावर पूँजी बनाकर रहा है । ४३ अथवा स्त्री मूर्तिमति (प्रत्यक्ष) सांसारिक व्याधि है; अथवा शोक, मोह, क्षुधा, तृषा, जन्म और मरण इन छः लहरों से परिपूर्ण नदी है; अथवा सब विकारों की मादा उस स्त्री के स्थान पर मानो मेले में आयी हुई है । ४४ यह (स्त्री रूपी) कुल्हाडी किसने बनायी, जो पुण्य रूपी दृढ़ वृक्ष को काटती है अथवा स्त्री जीव के पाँवों में बाँधी हुई अविश्वास की बेड़ी है । ४५ अथवा स्त्री निश्चय ही स्वर्ग और मुक्ति के मार्ग में आनेवाली बाधा है । वह अपने दर्शन (कराने) से पुरुष के चित्त को चुराती है, स्पर्श के बल से वीर्य का हरण करती है । (इस प्रकार) कामिनी प्रत्यक्ष राक्षसी होती है । ४६ स्त्री कुटिलता और दम्भ से युक्त (भरी-पूरी) तथा क्षमा और शुचिता से विहीन होती है— (ऐसी वह) स्त्री महामंत्र से पुरुष द्वारा प्राप्त सामर्थ्य का हरण क्षण मात्र में कैसे कर लेती है, यह ध्यान में नहीं आता । ४७ (गुड़ से बनायी हुई) गौड़ी, (मधु से बनायी हुई) माध्वी और पैष्टी नामक तीन प्रकार की मदिराएँ लोक में प्रकट (प्रसिद्ध) हैं । कामिनी चौथी मदिरा है । वह

ध्यान काय जप । कासया ज्ञान खटाटोप । हरिलें सर्व स्त्रियांनीं । ४९ जिव्हा दग्ध परान्नें पाहीं । हस्त दग्ध प्रतिग्रहीं । मन दग्ध स्त्रीचे ठायीं । करूनि काय जप तप । १५० व्यर्थ करिती पुरश्चरण । स्त्रियेनें हरोनि नेलें मन । करू बैसतां जों ध्यान । तों ध्यानीं चिंतन स्त्रियेचें । ५१ काय अध्ययन काय कीर्तन । व्यर्थ गेलें पुराणश्रवण । काय धरूनि धर्मदान । स्त्रियांनीं मन हरियेलें । ५२ स्त्री स्वरूपाची धरोनि दिवी । महानरकाची वाट दावी । सज्ञानियासही भुलवी । वनीं हिंडवी विषयांचिया । ५३ कीं काळें दूती पाठविलें देखा । चाळवूनि नेत महानरका । दुराविलें मोक्षसुखा । अधःपातीं पाडिलें । ५४ आतां असो हा अनुवाद । जरी कृपा करील ब्रह्मानंद । तरीच तुटेल भवबंध । हृदयीं बोध ठसावे । ५५ जरी कृपा करील जगज्जीवन । तरी हरिरूप दिसे जन वन । कैचा पुरुष नपुंसक

पाप की बदबू अथवा बदबूदार नाली है । ४८ क्या विद्या, क्या तप, क्या (किसी का) ध्यान और क्या तप, ज्ञान की प्राप्ति के लिए कैसा यह (आडम्बर पूर्ण) यत्न—सबको स्त्रियों ने हर लिया है । ४९ देखो, जिह्वा परान्न स्वीकार करने से दग्ध हो जाती है; हाथ प्रतिग्रह (दान स्वीकार) करने से जल जाते हैं और मन तो स्त्री के आश्रय से दग्ध हो जाता है । फिर जप, तप करने से क्या होता है ? १५० जिनका मन स्त्री अपहृत कर ले गयी (हो), वे बेकार में ही अनुष्ठान करते हैं । ध्यान करने के लिए बैठने पर जो ध्यान (मन) में स्त्री का चिन्तन करता है, उसका ध्यान करना व्यर्थ है । ५१ ऐसे लोगों का क्या अध्ययन, क्या कीर्तन, क्या पुराणों का श्रवण—सब व्यर्थ हो गया है; (उनके) धर्म-कर्म और दान करने से भी क्या लाभ ?—(क्योंकि) स्त्रियों ने उनके मन को हर लिया है। ५२ स्त्री अपने रूप (सौन्दर्य) की मशाल लेकर (पुरुष को) महा (भयंकर) नरक का मार्ग दिखाती है । वह ज्ञानी (मनुष्य) को भी लुब्ध कर लेती है और उसे विषयों (सांसारिक सुख भोगों की वासनाओं) के वन में घुमाती है । ५३ अथवा देखो, काल ने (स्त्री रूप में) दूती भेजी है, जो (पुरुष को) भुलावे में डालकर महा नरक की ओर ले जाती है । वह (मानो) उसे से मोक्ष सुख को दूर ले गयी है और उसने (उसे) अधःपात (की गर्त) में गिराया है । ५४ अब यह स्पष्टीकरण रहने दो । यदि (गुरु) ब्रह्मानन्द कृपा करे, तो ही संसार का बन्धन टूट जाएगा—यह ज्ञान हृदय में जम जाए (दृढ़ हो जाए)। ५५

पुछिलोहो कृतांजलि ताहार आगत * जाना महामुनि तुमि भूत भविष्यत
हैबेक आमार किबा पुत्र उतपति * बुलिलन्त मुनि चिन्ता नकरा नृपति४५७
महामुनि ऋष्यश्रृंग विभांड तनय * तांक आनि यज्ञ करियोक महाशय
तेवे आसिवन्त हरि चारि रूप धरि * तोमार गृहत उपजिब निष्ठ करि ५८
हेन शुनि भैल मोर हरिष मनत * कहिलो सकलो कथा तोमार आगत
बशिष्ठे बोलन्त शुना नृपति प्रस्तुत * नृत्यगीतप्रिया सिटो बिभांडर सुत ५९
मोदकर नामे येन मरिया जीवन्त * शुनि गीत मुनि येन अमृत पिवन्त
देखिते छवाल मुनि विष्णु अवतार * चारिवेद शास्त्र तान कंठत प्रचार ६०
प्रहरेक मात्र करे सन्ध्याक बन्दन * छवालर थाने क्रीड़ा करे सर्ब्बक्षण
आनाहा गायक जार सुर सुललित * सुस्वादु सन्देश लाडु लौक यथोचित ६१
सुस्वरे पंचम कन्यागणे गाउक गीत * शुनि बिमोहित आति हैब तान चित्त
मोदक सन्देश दिबा सेहि समयत * देखाइबेक रति रस ताहान आगत ६२
शिशु मुनि गीत सन्देशर स्वाद पाइ * आसिब आमार स्थाने एरि निज ठाइ
एहिमते उपाये मुनिक आनियोक * रचिला माधवे हरि हरि बुलियोक४६३

ऋष्यश्रृंगर उपाख्यान

छबि

सुमंत्री सुमंत्र गुणि बशिष्ठर बाणी शुनि उठिलन्त करि जोरहात ।
सुमधुर करि बाणी बुलिलन्त महामानी शुनियोक पृथिवीर नाथ ॥

हाल में दुर्बासा मुनि से मेरी भेंट हुई ॥४५६॥ भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे मैंने पूछा, हे महामुनि, तुमको भूत-भविष्यत सब ज्ञात हैं, मुझको पुत्र उत्पन्न होगा या नहीं यह बताओ। मुनि ने कहा, हे राजा तुम चिन्ता मत करो ॥ ४५७ ॥ विभांडक के पुत्र महामुनि ऋष्यश्रृंग हैं, हे महाशय, उनको बुलवाकर यज्ञ करना। तब भगवान् चार रूप धारण कर तुम्हारे घर में निश्चयरूप से जन्म लेंगे ॥ ५८ ॥ ऐसा सुनकर मेरे मन में हर्ष हुआ। तुम्हारे सामने मैंने सारी बातें बता दीं। वशिष्ठ ने कहा, राजा सुनो, तैयारी करो। विभांडक का वह लड़का नाच गाने का शौकीन है॥ ५९ ॥ मोदक-मिठाई का नाम सुनकर यदि वह मृत हो तो भी जीवित हो जाय। वह गीत यों सुनता है मानों अमृत का सेवन कर रहा हो। वह देखने में लड़का है लेकिन वह मुनि साक्षात् विष्णु का अवतार है। चारों वेद और शास्त्र उसके कंठ से प्रकट होते हैं॥ ६० ॥ वह केवल प्रहर-भर के लिए सन्ध्या-वन्दना करता है फिर बाकी सारा समय लड़कों के साथ खेल-कूद में मस्त रहता है। ऐसा गायक ले आओ जिसका स्वर सुललित हो और स्वादिष्ट पेड़ा, लड्डू आदि यथोचित मात्रा में ले जाओ, ॥ ६१ ॥ कन्याएं पंचम सुर में सुललित गीत गाती हुईं, जिसे सुनकर उसका चित्त विमोहित हो जाय, उसी समय पेड़ा लड्डू भी देना और उसके सम्मुख श्रृंगार-रस का प्रदर्शन करना॥ ६२ ॥ शिशु मुनि गीत और मिठाई का स्वाद पाकर, अपना स्थान छोड़ कर हमारे स्थान पर आ जायगा। इसी उपाय से मुनि को ले आना। माधव ने इसकी रचना की। हरि का नाम लो ॥ ४६३ ॥

ऋष्यश्रृंग का उपाख्यान

वशिष्ठ की बातें सुनकर उत्तम मंत्री सुमंत्र हाथ जोड़ कर खड़े हो गये और मधुर वचन बोले, हे महामान्य पृथ्वीपति, आप सुनें। वशिष्ठ ने जो कुछ कहा वह सब

बशिष्ठे कहिला यत सबे सत्य स्वरूपत पूर्ब्बकथा सुमरिलो आमि ।
आपुनियो जाना तुमि साम्प्रते पासरि आछा सुमिराइले सुमरिबा स्वामी ।।४६४
शान्ता नामे कन्याखानि तयु गृहे महामानी उपजिल परम सुन्दरी ।
लोमपाद नरपति अंगदेश अधिपति शान्ताक खुजिला भक्ति करि ।।
मित्रर भावत थाकि तुमियो शान्ताक दिला लोमपादे शान्ताक निलन्त ।
आनन्दे नधरे हिया कन्याक गृहक निया जीउ बुलि तेन्ते तुलिलन्त ।। ६५
लोमपाद महामुनि विभांडर पुत्र आनि शान्ता कन्या दिलन्त विवाह ।
ऋष्यश्रृंग निया यज्ञ करि पाचे लोमपादे पुत्र पाया मिलिल उत्साह ।।
द्वादश बत्सर बृष्टि ताहार राज्यत नाइ ताते लोक मरय समस्त ।
ऋष्यश्रृंग आसिलात भैला बृष्टि असंख्यात पाचे सुखी हैला लोक यत ।। ६६
शुनि दशरथ पाचे सुमंत्रत पुछिलन्त शुनियोक सुमन्त्र साक्षात ।
केनमते ऋष्यश्रृंग करिला शान्ताक बिहा प्रपंचिया कहियो आमात ।।
सुमंत्र बोलन्त राजा शुनिओ कौतुक मने सिटो विभांडक महाऋषि ।
ऋष्यश्रृंग पुत्र लैया माधवत मति दिया करे तप तपोबने बसि ।। ६७
अपुत्रक भैलो बुलि लोमपाद नृपतिर मने आति असुख अशेष ।
ऋष्यश्रृंग आनि यज्ञ कराइले हैबेक पुत्र पाइला नारदत उपदेश ।।
लोमपाद राजा पाचे ऋषिपुत्र आनिबाक करिलन्त उपाय उत्तम ।
नौकार उपरे नाना फल-मूल समन्विते मायाबले पातिला आश्रम ।। ६८
सुगन्ध कर्पूर चिनि घृते पाक करि आनि साजिलन्त बिबिध सन्देश ।
फल-फुल रूपे ताक वृक्षते निर्म्मिया थैल देखि बन परम सुबेश ।।
नाना गन्धे हुया मत्त गुंजरे भ्रमर यत कोकिलर कुहु कुहु राव ।
बहय शीतल बात कामुक रमणी येन मदनक देय हाथ बाव ।। ६९

सत्य है। मुझको पुरानी बात याद आ गई। हे स्वामी, आप भी जानते हैं किन्तु इस समय भूले हुए हैं, याद दिलाने से याद आ जायगी ।। ४६४ ।। हे महामान्य आपके घर में शान्ता नामक जिस परम सुन्दरी कन्या ने जन्म लिया, अंगदेश के राजा लोमपाद ने भक्तिपूर्वक उस शान्ता को ढूंढ़ निकाला। मित्र-भाव से तुमने भी शान्ता को दिया और लोमपाद ने शान्ता को ग्रहण किया। (राजा लोमपाद) आनन्दपूर्ण हृदय से कन्या को अपने घर बेटी के रूप में ले भी गया ।। ६५ ।। लोमपाद ने महामुनि विभांडक के पुत्र को लाकर शान्ता के साथ विवाह कराया। बाद में लोमपाद ने ऋष्यश्रृंग को लेकर यज्ञ किया और पुत्र प्राप्त कर उत्साहित हुआ। उसके राज्य में बारह वर्ष से वर्षा नहीं हो रही थी और इस कारण लोग मरने लगे थे। ऋष्यश्रृंग के आने से पर्याप्त वर्षा हुई और सारे लोग सुखी हुए ।। ६६ ।। यह सुन कर दशरथ ने सुमंत्र से पूछा, हे सुमंत्र सुनो, मेरे सम्मुख यह विस्तार से बताओ कि ऋष्यश्रृंग ने शान्ता से कैसे विवाह किया। सुमंत्र ने कहा, राजा कौतुक से सुनो। विभांडक नामक महाऋषि अपने पुत्र ऋष्यश्रृंग को लेकर माधव का ध्यान कर तपोवन में बैठा तपस्या करता था ।। ६७ ।। अपुत्रक होने के कारण राजा लोमपाद के मन में बड़ा दुःख था। नारद से उसको परामर्श मिला कि ऋष्यश्रृंग को बुलवाकर यज्ञ करने से पुत्र प्राप्त होगा। इसके अनन्तर राजा लोमपाद ने ऋषिपुत्र को बुलवाने के लिए अच्छा उपाय ढूंढ़ निकाला। नाव पर फल-मूल से पूर्ण एक आश्रम मायाबल से बनाया ।। ६८ ।। सुगन्धित कपूर और चीनी से विविध प्रकार की मिठाइयाँ घी में तलकर बनाई गईं। उनको फल-फूल के रूप में वृक्षों में जड़ दिया और वन देखने

जाने यत नृत्य गीत आतिशय सुशिक्षित युवती सुन्दरी सुवदनी ।
कामकला केलि यत जाने आति नानामत नाना रसे परम शुवनी ॥
गावे येन पट्टबासे अतिशय लयलासे काछि पारि नावत चड़िल ।
कतेक वर्णाइबो ताक ऋष्यश्रृंग आनिबाक सुमंगल समये लरिल ॥ ७०
कतो दिन अनन्तरे पाइला गैया तपोबन माया नौका आर करि थैला ।
बिभांडक मुनिबरे पुत्र थैया निजघरे तप करिबाक लागि गैला ॥
पाचे नटीगण यत छेग पाया समयत गैया ऋष्यश्रृंगर आगत ।
हाते तालयंत्र धरि सुर सुललित कर नृत्य गीत करे नानामत ॥ ७१
विभांडक आसिबार समय जानिया सबे तरातरि आश्रमक जाइ ।
एहिमते नृत्यगीते क्रीड़ा करि नानामते ऋषिक मोहिला समुदाय ॥
नाचनिर लयलास देखि मुनि तोले हास कुतूहले करन्त जिज्ञास ।
मूर्त्ति आति अनुपाम कमन तोमार नाम कोन थाने कराहा निबास ॥ ७२
शुनि नारी निरन्तरे दिला तांक प्रत्युत्तर सबे आमि उत्तम तपस्वी ।
जानो तुमि मुनिराज पशि तपोबन माज करा तप एक मने बसि ॥
निकटते तपोबन तयु आगे सर्ब्बक्षण नृत्य गीते करो कौतूहल ।
तोमार संगक मने आमि सब ऋषिगणे बेदपाठ करो सुकोमल ॥ ७३
ऋष्यश्रृंग माया वाणी शुनि मने अधुमानि बोले शुना शुना ऋषिगण ।
तोमासार पाया संग मोहोर कौतुक रंग मिलय मनत सर्ब्बक्षण ॥
आमिओ तोमार तुले थाकिबोहो कौतूहले सुमधुर वेदध्वनि शुनि ।
आति सुललितभावे सुन्दर कोमल गावे तुमिसब समे महामुनि ॥ ७४

में बहुत ही सुन्दर लगने लगा। विभिन्न प्रकार की सुगन्ध से मत्त होकर भौंरे गुंजन करने लगे और कोयलें कूकने लगीं। शीतल पवन चलने लगी मानो कामुक रमणी मदन को संकेत कर रही है ॥ ६९ ॥ नृत्यगीत में सुशिक्षिता सुमुखी सुन्दरी युवतियाँ जो विभिन्न प्रकार की कामकला-क्रीडा में सुनिपुणा तथा परम रसिका और रूपवती थीं, पट्टवस्त्र पहने हुई नृत्यभंगिमा में कछाना मारकर नाव पर चढ़ गईं। भला उसकी कितनी वर्णना करूँ। वे ऋष्यश्रृंग को लिवा लाने के लिए शुभघड़ी में रवाना हुईं ॥ ७० ॥ कितने ही दिनों के बाद वे तपोवन के पास पहुँची। मायामयी नौका को बाँध दिया। मुनिवर विभांडक अपने पुत्र को अपने आश्रम पर छोड़कर तपस्या करने के लिए चले गये। पीछे नटियाँ मौका पाकर ऋष्यश्रृंग के पास जा पहुँचीं। वहाँ वे अपने हाथों में तालयंत्र लेकर सुललित स्वर में बजाते हुए नृत्य-गीत करने लगीं ॥ ७१ ॥ विभांडक के आने के समय का पता लगाकर वे तुरन्त आश्रम पहुँच गईं। इस प्रकार नृत्य-गीत एवं क्रीड़ाओं के द्वारा उन लोगों ने ऋषि को मुग्ध कर दिया। नृत्य का छन्द और लास्य देखकर मुनि हँसने लगा और कौतूहल से पूछने लगा, तुम लोगों की मूर्त्ति अनुपम है, तुम लोगों का क्या नाम है और तुम लोगों का निवास कहाँ है ? ॥ ७२ ॥ यह सुनकर उन नारियों ने उत्तर दिया हमलोग सब उत्तम तपस्वी हैं। हे मुनिराज यह जान लो कि हम तपोवन के बीच बैठकर ध्यान लगाकर तपस्या करते हैं। निकट में तपोवन है। तुम्हारे सम्मुख कौतूहलवश नृत्य-गीत कर रहे हैं। तुम्हारी संगत में आकर हम ऋषिलोग सुकोमल ध्वनि में वेदपाठ कर रहे हैं ॥ ७३ ॥ यह मायामयी वाणी सुनकर मन ही मन गुन कर ऋष्यश्रृंग ने कहा, सुनो ऋषिगण, तुमलोगों की संगत पाकर मेरा मन कौतुक और रंग से भर गया है। मैं भी तुम्हारे साथ रहकर तुम्हारी सुमधुर वेदध्वनि कौतूहल से सुनूँगा। तुम

सुशोभन जटाभार बाकलि बसन गार अत्यन्त शीतल आतिशय ।
तोमासार शरीरर भस्म धूलि निरन्तर उत्तम सुरभी गन्ध कय ।।
आमार बृक्षर छाल पिन्धिबाक नुहि भाल शिरे आउल जाउल जटाभार ।
करे आति जटाजट शुनि आनि खटमट वेदध्वनि यतेक आमार ।। ७५
शरीर सकल रक्षा भस्म धूलि यत देखा घषिते कुत्चित करे गाव ।
एहिमते मुनिबर वर्णाइला निरन्तर अतेक आपोन पर भाव ।।
उपजारे परा ऋषि निज आश्रमते बसि तप करि थाकन्त सदाय ।
परम महन्त सन्त आन एको नजानन्त तपे भन मग्न समुदाय ।। ७६
मायारूपीगणे यत कपटे कहिला कथा ताके सत्य मनत मानिल ।
पाचे स्त्रीसबे आनि मोदक सन्देश निया ऋषिर पुत्रर हाते दिल ।।
ऋष्यश्रृंग महामुनि फल हेन मने मानि भुंजिला हरिष करि मन ।
नजानि कपट माया सुस्वादु सुरभी पाया पुछिलन्त शुना ऋषिगण ।। ७७
तोमार राज्यर फल खाया भैलो कुतूहल इटो तांति स्वादत विचित्र ।
आछय आमाक दाया अन्ये अन्यो आलिंगिया आसा तुमि आमि करो मित्र ।।
तोमासार संगे जाइबो इटो मधुफल खाइबो शुनिबो मधुर वेदध्वनि ।
थाकिबो तोमार संगे तप करि महारंगे अन्यो अन्ये बंचिबो रजनी ।। ७८
नमो नमो नमो राम जार जश अनुपाम जगतरे मंगल निश्चय ।
अमृततोधिक करि पिया आक कर्ण भरि महाजने मोक्षको तेजय ।।
हेन तयु गुण नाम मोर मुखे अविश्राम कीर्त्तन करोक प्रभु राम ।
एहि कृपा कर मोक यत समाजिक लोक बोला राम तेजि आन काम ।।४७९

सभी महामुनि सुन्दर व कोमल शरीर वाले हो ।। ७४ ।। तुम लोगों की जटाएँ कितनी शोभन हैं, बदन पर जो वल्कल-वसन है वह कितना शीतल है । तुम लोगों के शरीर पर मले हुए भस्म और धूल से कितनी उत्तम सुगन्ध आ रही है । मेरे पहिनने वाली पेड़ की छाल पहनने में अच्छी नहीं, सिर पर अस्त-व्यस्त जटाओं का भार है, मेरी वेदध्वनि सुनने में कठोर और कटु है ।। ७५ ।। शरीर राख हो गया है, राख और धूल जो बदन पर मलता हूँ तो उतना ही शरीर कुत्सित हो जाता है । इस प्रकार मुनिवर अपना और पराया जितना भाव था वर्णन करता रहा । जन्म से ही ऋषि आश्रम में बैठकर सदा तपस्या करता रहा । वह बहुत बड़ा सन्त था, किसी दूसरे को जानता ही नहीं था और सदा तपस्या में लीन रहता था ।। ७६ ।। मायारूप धारण करने वाली नारियों ने जो कुछ भी कपट से कहा सभी कुछ ऋषि ने सत्य मान लिया । इसके पश्चात् उन नारियों ने लड्डू-मिठाई आदि लाकर ऋषिपुत्र के हाथों में दिया । महामुनि ऋष्यश्रृंग ने उनको फल जानकर बड़े आनन्द से खाया । उनका छल-कपट न भाँप कर सुगन्धित और स्वादिष्ट फल पाकर उसने पूछा, हे ऋषिगण, तुम्हारे राज्य का फल खाकर मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है, इनका स्वाद तो बड़ा अनोखा है । आओ हम लोग एक दूसरे से गले मिलकर मित्र बन जायें । तुम लोगों के साथ जाऊँगा, यह मधुफल खाऊँगा और मधुर वेदध्वनि सुनूँगा । तुम्हारे साथ रहकर बड़े आनन्द से तपस्या करूँगा और सब लोग मिलजुल कर रात काटेंगे ।। ७७-७८ ।। राम का नमन करो जिनका यश अनुपम है, संसार का अवश्य कल्याण होगा । महाजन मोक्ष को त्याग कर अमृत से अधिक समझकर (यह नाम) कान की अंजलियों में भर कर पीते हैं। हे प्रभु राम, ऐसा जो तुम्हारा नाम है, वह मेरे मुख से कीर्त्तन के रूप में निकले । इतनी ही कृपा मुझ पर करना । हे समाज के लोगो, अन्य सारे काम छोड़ कर राम का नाम बोलो ।।४७९।।

पद

नटीसबे शुनि ऋष्यश्रृंगर बचन * भैला मित्र बुलि करिलन्त आलिंगन
देखिला नजाने किछु ऋषिर तनय * नाना कामकला रसे भाव दरशय४८०
केहो जनी आलिंगि धरिला तान गले * केहो जनी बसुवाइला बस्त्रर आंचले
केहो जनी निया तांक बसाइला कोलात * स्तनर उपरे केहो थैला तान हात ८१
केहो जनी तान मुखे मुखे चुमा दिल * बुकत लगाया स्तन केहो सावटिल
केहो जनी हृदयर बस्त्र दूर करि * उच्च कुच भार ताक देखावे सुन्दरी ८२
आपोनार उरु तान उरुत लगाय * कटाक्षे निरीखि हासि तोले मुचुकाइ
कतो जनी गाव घेलावय तान संगे * लयलासे हासे कतो जनी भुरुभंगे ८३
कतो जनी बाहु धरि करय मर्दन * कोले तुलि कतो जनी जान्तय चरण
कतो जनी आपोनार गावे आयोजाय * मुख काटि करिया थाकय ताके चाइ ८४
पाचे ऋषिकुमारक करि बहुमान * सुगन्ध शीतल जले कराइलेक स्नान
भस्म धूलि तान शरीररो दूर करि * पिन्धाइलेक कुसुम चन्दन सादरि ८५
बाकलि गुचाया दिव्य पिन्धावे बसन * रुद्राक्ष गुचाया दिव्य पिन्धावे भूषण
शिलिखा गुचाया देइ कर्पूर ताम्बुल * सुरभी शीतल पिन्धावय कतो फुल ८६
तालजंग धरि सुललित गीत गावे * मधुर मृदंग धरि कतो जनी बावे
कतो लयलासे भंगिभारे करे नृत्य * एहिमते मोहित करिल तान चित्त ८७

पद

ऋष्यश्रृंग की बातें सुनकर सभी नर्तकियाँ 'हम लोग एक दूसरे के मित्र हो गये' यह कहकर उनका आलिंगन करने लगीं। उन लोगों ने देखा कि ऋषिपुत्र कुछ भी नहीं जानता है। वे उसे लुभाने के लिए कितने ही ढंग से काम के भाव प्रदर्शन करने लगीं ॥ ४८० ॥ कोई तो गले मिलकर आलिंगन करने लगी तो कोई अपने वस्त्र के आँचल पर उसको बिठाने लगी, कोई उसको लेकर अपनी गोद पर बिठा लेती तो कोई उसका हाथ लेकर अपने स्तन पर रख लेती ॥ ८१ ॥ किसी ने उसके मुख का चुम्बन लिया तो किसी ने अपने स्तन उसके हृदय सीने से लगाकर आलिंगन किया, किसी ने कपड़े हटाकर अपने ऊँचे ऊँचे स्तन उसे दिखाये ॥ ८२ ॥ किसी ने अपनी जाँघ से उसकी जाँघ मिलाकर कटाक्षपात कर मुसका दिया। कितनी ही नारियाँ उसकी देह से देह मिलाकर हँसतीं तो कितनी ही हास्यलास्य से भ्रूभंग करतीं ॥ ८३ ॥ कितनी ही नर्तकियाँ उसकी बाँह पकड़कर मसलने लगीं, कितने ही उनके पाँव अपनी गोद में लेकर चाँपने लगीं। कोई अपना शरीर उसके बदन पर टेक लगाकर मुँह फैलाकर उसकी ओर टकटकी लगाये रहती ॥ ८४ ॥ इसके पश्चात् ऋषिकुमार का काफी सम्मान करती हुई वे नर्तकियाँ उसको सुगन्धित शीतल जल से नहलाने लगीं। उसके शरीर के भस्म और धूल को धोकर उसपर चन्दन पोत दिया और फूल पहना दिये ॥ ८५ ॥ पेड़ की छाल फेंक कर वस्त्र पहना दिया। रुद्राक्ष फेंककर आभूषण पहना दिया। हड़ फेंककर उसको कपूर और पान दिया। कितने ही सुगन्धित शीतल फूलों की मालायें उसको पहना दीं ॥ ८६ ॥ इसके बाद वे ताल-लय में सुललित गीत गाने लगीं, कोई मधुर मृदंग लेकर बजाने लगी, वे कितने ही छन्द और मुद्राओं में नृत्य करने लगीं। इस प्रकार से वे उसके चित्त को मोहित करने लगीं ॥ ८७ ॥ सुमंत्र ने कहा, सुनो महाशय, विभांडक-पुत्र को ग्राम्य-जनों का संग मिला। उसक सारा ऋषि-धर्म चौपट हो गया।

सुमंत्र बदति शुनियोक महाशय * ग्रामी जन संग पाया बिभांडतनय
ऋषि धर्म्म सकले गुचिल समुदाय * भैल उलमाल नारीगण संग पाइ ८८
स्त्री समस्तक मुनि बुलिला बचन * तोमार आश्रम कत दूर मुनिगण
तुमिसब महामित्र भैलाहा आमार * देखिते उत्सुक आछे आश्रम तोमार ८९
मायावतीसबे बोले शुना मुनिबर * निकटे आश्रम जाइबा उठियो सत्वर
शुनि ऋष्यश्रृंग उठिलन्त शीघ्र करि * चलिला कौतुके तासम्बार हात धरि ९०
कथामातो नौकात तुलिला नारीगणे * आश्रम देखिया मुनि रंग भैला मने
भालर आश्रम तपोबन बितोपन * नाना फल-फुले आमोदित करे मन ९१
हरिषे फुरन्त ऋषि मायाबन चाइ * मायारूपी सबे नाव बाया लैया जाय
नाना केलि कौतुक करिया ऋषिसंगे * मायानौका पार करिलेक महारंगे ९२
श्रम पाया ऋषिर कुमार निद्रा गैला * अनन्तरे नौका आसि अंगदेश पाइला
भागिल ऋषिर निद्रा पाचे कतोक्षणे * स्त्री सकलत मुनि पोछे संगी मने ९३
कहियोक तुमि सबे स्वरूप वचन * नोहा तुमिसबे ऋषि नुहि तपोवन
तुमि सबे आमाक मोहिला माया करि * आपोनार देशे आनि आछा छल करि ९४
कि कारणे आनिला कहियो प्रयोजन * शुनि जोरहाते मातिलेक नारीगण
शुनियोक मुनि नकरिबा कोप मन * कहिबो तोमात आछे यत प्रयोजन ९५
लोमपाद राजा अंगदेश अधिपति * शान्ता नामे कन्या तान आछे महासती
त्रैलोक्यमोहिनी कन्या महागुणवती * करिबा बिबाह ताक तुमि महामति४९६
अपुत्रक राजा मने करे अपमान * तुमि यज्ञ कराइले हैबेक पुत्र तान
द्वादश बत्सर बृष्टि नाहिके राज्यत * अन्नर बिकले दुख पावे प्रजा यत४९७

नारीसंग पाकर उसका सब कुछ अस्त-व्यस्त हो गया ।। ८८ ।। मुनि ने सारी नारियों से कहा, हे मुनिगण, तुमलोगों का आश्रम कितनी दूर है ? तुम सब हमारे महामित्र बन गये। तुम्हारा आश्रम देखने को मैं उत्सुक हूँ ।। ८९ ।। तब उन मायावतियों ने उत्तर दिया, हे मुनिवर सुनो, हम लोगों का आश्रम निकट ही है, यदि चलना है तो तुरन्त उठो। यह सुनकर ऋष्यश्रृंग झट उठ कर खड़ा हो गया और उनका हाथ पकड़ कर कौतुक से चलने लगा ।। ९० ।। बातों में बहला कर नारियों ने उसे नाव पर चढ़ाया। आश्रम देखकर मुनि बड़ा प्रसन्न हुआ। यह तो बड़ा सुन्दर आश्रम है, अति उत्तम तपोवन है। तरह तरह के फल और फूलों से मन को आमोदित करता है ।। ९१ ।। मायावन को देखकर ऋषि हर्ष से घूमता-फिरता रहा। जितनी मायामयी नारियाँ थीं वे नाव खे कर ले चलीं। ऋषि के साथ तरह तरह की केलि और क्रीड़ा करती हुई बड़े आनन्द से वे नाव लेकर आगे बढ़ चलीं ।। ९२ ।। ऋषि-पुत्र जब थक कर सो गया तो नाव आकर अंगदेश से लगी। कुछ ही देर के बाद ऋषि की नींद टूटी। साथी समझ कर ऋषि ने नारियों से पूछा— ।। ९३ ।। तुम लोग मुझको सच सच बताना। तुम लोग ऋषि नहीं हो और न वह तपोवन है। तुम लोगों ने मायाबल से मुझको मोह लिया और धोखे से अपने देश में ले आए ।। ९४ ।। किस कारण मुझको यहाँ तुम ले आए, तुमको क्या जरूरत आ पड़ी ? यह सुनकर नारियों ने हाथ जोड़ दिये और बोलीं, हे मुनि, क्रोध मत करो, हम लोगों की आपसे जो आवश्यकता है वह अभी बताती हूँ ।। ९५ ।। अंगदेश के राजा लोमपाद की एक महासती कन्या शान्ता है। वह कन्या त्रैलोक्यमोहिनी तथा महागुणवती है। हे महामति, तुम उससे विवाह करो ।। ४९६ ।। राजा का कोई पुत्र नहीं इसलिए अपुत्रक राजा अपना अपमान समझता है। तुम्हारे यज्ञ कराने पर उसको पुत्र होगा।

तुमि गैले राज्यत हैबेक बरिषण * हैबे लोक सुखी शष्य मैंबेक सम्पन्न
लैया जाओं तोमाक एहिसे प्रयोजने * कहिलो कारण मुनि कोप एरा मने४९८
एहि कथा माते नटीगण निरन्तर * कतो दिने पाइला लोमपादर नगर
शुनि लोमपादे ऋष्यश्रृंग आनिबार * आगबाढ़ि आसिया करिल सतकार४९९
भैलन्त हरिष राजा ऋषिक देखिया * करिल ऋषिक पूजा पाद्य-अर्घ्य दिया
जेवे अंगदेशे आसि भैलन्त प्रवेश * तेवे जल बृष्टि मेघे करिला अशेष५००
भैल शष्य सम्पूर्ण राज्यत निरन्तर * नाना भोग भुंजि सुखी भैला सबे नर
लोमपादे नाना द्रव्य एकत्र करिल * ऋष्यश्रृंग मुनित शान्ताक बिहा दिल५०१
भैल कुतूहल मुनि पाया कन्यारत्न * पाचे यज्ञ करिते राजार भैल यत्न
एकत्र करिया यत यज्ञर सम्भृत * करिला युगुति पुरोहित समन्वित५०२
अश्वमेघ महायज्ञ राजा आरम्भिल * ऋष्यश्रृंग यज्ञत कौतुके प्रवेशिल
परम पंडित सर्ब्ब कर्म्मत कुशल * शुभ समयत आचरिला सुमंगल५०३
लोमपाद राजा भैल यज्ञत दीक्षित * यज्ञकार्य कलाक्रिया कार्य सुशिक्षित
सांगोपांगे यज्ञ करिलाहा नरपति * पाइलन्त यज्ञत पुत्रबर महामति५०४
उपजिल चारि पुत्र परम महन्त * बुद्धि बल तेज महा गुणे गुणवन्त
शान्ताये सहिते ऋष्यश्रृंग महाऋषि * लोमपाद आश्रमत रहिला हरिषि५०५
सम्प्रति आछन्त शान्ता समे कुतूहले * ताहान चरित्र यत कहिलो सकले
ऋष्यश्रृंग आनि यज्ञ करियो नृपति * हैबेक तोमार तेवे उत्तम सन्तति५०६
भैलन्त हरिष सुमंत्रर कथा शुनि * दशरथ राजा मातिलन्त मने गुणि

बारह वर्ष से इस राज्य में वर्षा नहीं हुई, बिना अन्न के सभी प्रजाएँ व्याकुल हो दुःख भोग रही हैं ।। ४९७ ।। तुम्हारे जाने पर राज्य में वर्षा होगी पृथ्वी अन्न से सम्पन्न होगी और लोग सुखी होंगे, तुमको इसी प्रयोजन से ले आई हूँ। हे मुनि, हमने कारण बता दिया, अब क्रोध मत करो ।। ४९८ ।। नटियाँ निरन्तर यही बात कहती रहीं। कितने दिनों के बाद लोमपाद का नगर आया। लोमपाद आगे बढ़कर ऋष्यश्रृंग मुनि की अगवानी करने आ गये ।। ४९९ ।। ऋषि को देखकर राजा बड़े प्रसन्न हुए। पाद्य, अर्घ्य आदि देकर ऋषि की चरण-वन्दना की। जैसे अंगदेश में उनका प्रवेश हुआ वैसे ही बादलों से पर्याप्त वर्षा होने लगी ।। ५०० ।। सारे राज्य में प्रभूत अन्न उत्पन्न हुआ। सारे नर हर प्रकार का सुख भोगकर सुखी हुए। लोमपाद ने विभिन्न द्रव्य एकत्रित किये और ऋष्यश्रृंग मुनि के साथ शान्ता का विवाह कर दिया ।। ५०१ ।। कन्यारत्न पाकर मुनि को कुतूहल हुआ। इसके पश्चात् राजा ने यज्ञ करने का प्रयत्न किया। यज्ञ के सारे सामान एकत्र कर पुरोहित के साथ मंत्रणा की ।। ५०२ ।। इसके बाद राजा ने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया। ऋष्यश्रृंग ने कौतुक से यज्ञ में प्रवेश किया। सभी कर्मों में कुशल उन परम पंडित ऋष्यश्रृंग ने शुभघड़ी पर सुमंगल कार्य आरम्भ किया ।। ५०३ ।। राजा लोमपाद यज्ञकार्य में दीक्षित हुए और यज्ञकार्य की कला और क्रिया में संलग्न हो गए। राजा ने आद्योपान्त यज्ञ किया; उस यज्ञ से उनको पुत्ररत्न प्राप्त हुआ ।। ५०४ ।। उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए जो कि परमश्रेष्ठ हुए, वे बुद्धि बल तेज आदि सर्वगुणों से युक्त थे। महर्षि ऋष्यश्रृंग शान्ता के साथ लोमपाद के राज्य में आनन्द से रहने लगे ।। ५०५ ।। इस समय वे शान्ता के साथ आनन्द से हैं। उनका सारा विवरण मैंने कह सुनाया। हे नृपति, ऋष्यश्रृंग को बुलवाकर यज्ञ करो, इससे तुमको अच्छे पुत्र उत्पन्न होंगे ।। ५०६ ।। सुमन्त्र की बातें सुनकर राजा दशरथ प्रसन्न हुए और मन में सोचकर बोले—

ऋष्यश्रृंग मुनिक आनिबलै लोमपाद नृपतिर घरलै दशरथर गमन आरु ऋषिक आनि यज्ञ सम्पादन

शुनियो सुमंत्र कथा कहिला बिशेष * जाइबो मइ लोमपाद नृपतिर देश५०७
पात्र मित्र पुरोहित चलियो सकल * एहि बुलि यात्रा करिलन्त महाबल
वशिष्ठ प्रमुख्ये पुरोहितगण रंगे * चलिला हरिषे सबे नृपतिर संगे ८
सुमंत्रे सहिते आठ पात्र ढलि गैला * गज बाजी रथ सेना साजि लगे लैला
काहालि महरी भेरी मृदंग तबल * ढाक ढोल दुन्दुभि शबदे टलबल ९
चिह्न चौंडा ध्वजदंड गाहुल बम्बाल * नृपतिर आगे पाचे चलिला सकल
कांचने रचित रथे चड़िल नृपति * कटकर भरे दलक्षेप बसुमती १०
राजार उपरे क्षत्र प्रकाशे धवल * आकाशे प्रकाशे येन चन्द्रर मंडल
त्रिभुवन चमत्कार राजार पयान * कम्पे सुरासुर यत तरतरिमान ११
हेन आड़म्बरे अंगदेश प्रवेशिला * लोमपाद नृपतिर आश्रमे मिलिला
देखि लोमपादर हरिष भैल मन * दशरथ नृपतिक करिला बन्दन १२
कृतांजलि करि धरि प्रणति प्रचुर * दशरथ राजाक निलेक अन्तःपुर
सुवर्णर सिंहासन दिला बसिबाक * पाद्य अर्घ्य दिया पूजा करिला राजाक १३
बशिष्ठक आसन दिलन्त महाबीरे * धुवाया चरण पादोदक लैला शिरे
दशरथ नृपतिक करे राजा स्तुति * तयु आगमने भैला थानर मुकुति५१४

ऋष्यश्रृंग मुनि को लाने के लिए दशरथ का राजा लोमपाद के पास जाना और ऋषि को लाकर यज्ञ सम्पन्न करना

सुनो सुमन्त, तुमने यह बात ठीक बताई। मैं राजा लोमपाद के देश जाऊँगा ।। ५०७ ।। 'पात्र मित्र पुरोहित आदि सभी मेरे साथ चलें' यह कहकर महाबली दशरथ ने यात्रा की। वशिष्ठ आदि सारे पुरोहित नृपति के साथ सहर्ष चल पड़े ।। ८ ।। सुमंत्र के साथ आठ पात्र गये। वे हाथी, घोड़ा और सेना सुसज्जित कर अपने साथ ले गये। काहाली, महरी, भेरी, मृदंग, तबला, ढाक, ढोल, दुन्दुभि आदि बाजों के शब्द से चारों ओर चहल-पहल मच गई ।। ९ ।। ध्वज-पताका-चँवर आदि से शोभित राजा के आगे-पीछे गायक आदि चलने लगे। राजा स्वर्णनिर्मित रथ में सवार हुए। सेना की पदचाप से धरती डोलने लगी ।। १० ।। राजा के ऊपर श्वेतवर्ण छत्र इस प्रकार शोभित हुआ जैसे आकाश में चन्द्र का मंडल शोभायमान होता है। राजा के इस अभियान पर तीनों लोक चमत्कार करने लगे और सारे सुर और असुर थर-थर काँपने लगे ।। ११ ।। ऐसे आडम्बर के साथ उन्होंने अंगदेश में प्रवेश किया और राजा लोमपाद के भवन में जा पहुँचे। उन्हें देखकर लोमपाद को बड़ी खशी हुई और उन्होंने राजा दशरथ की वन्दना की ।। १२ ।। हाथ जोड़ नमन करने के उपरान्त वे राजा दशरथ को अन्तःपुर ले गये। बैठने के लिए स्वर्ण-सिंहासन दिया और पाद्य-अर्घ्य के द्वारा राजा की पूजा की ।। १३ ।। महावीर लोमपाद ने वशिष्ठ को बैठने के लिए आसन दिया, उनके चरण धोकर पादोदक को सिर से लगाया और फिर राजा दशरथ की स्तुति करने लगे—"तुम्हारे आगमन से इस स्थान को मुक्ति मिल गई ।।५१४।।

यज्ञकर्म थयां सहु बंध, नथी पृथ्वीमां पुण्य-संबंध,
नित्य सेवा करावे नष्ट, गौब्राह्मण हणता दुष्ट। ३६।
माटे सत्वर करीए उपाय, हवे दुःख सह्युं नव जाय,
विधि कहे चालो सहु जईए, पासे जई दुःख कहिये। ३७।
भीडभंजन देवदयाळ, जे सदा करता संभाळ,
एवुं कही चाल्या तत्काळ, आव्या क्षीरसागरनी पाळ। ३८।

वलण (तर्ज़ बदलकर)

क्षीरसागरने तटे आवी, ऊभा सर्वे देव रे;
विनये सहु विश्वंभरने, स्तुति करता ततखेव रे। ३९।

सब यज्ञ-कर्म बन्द हो गये। पृथ्वी पर पुण्य सम्बन्धी कार्य नहीं (रहे) हैं। वह मुआ नित्य सेवा कराता है; वह दुष्ट गौ-ब्राह्मणों का वध कराता है। ३६। इसलिए शीघ्र ही उपाय करो। अब (हमसे) दुःख नहीं सहा जाता।' (इसपर) विधाता ने कहा—'चलो, सब चलें। (भगवान् के) पास जाकर दुःख कहें। भगवान् संकट के नाशकर्ता तथा दयालु हैं, जो हमेशा (सबकी) रक्षा करते हैं'। ऐसा कहकर वे तत्काल चल पड़े और क्षीरसागर के तट पर आ गये। ३७-३८।

क्षीरसागर के तट पर आकर सब देव खड़े (हो गये) हैं। तत्क्षण सब विश्वम्भर भगवान् का विनम्रतापूर्वक स्तवन करते हैं। ३९।

* * *

अध्याय–८ (श्रीनारायण का सब देवों को उपदेश)

राग बिलावल

क्षीरसागर विषे रहेता, नारायण अविनाश,
एक लक्ष जोजन मणिमंडप कोटि सूरज प्रकाश। १।

अध्याय–८ (श्रीनारायण का सब देवों को उपदेश)

अविनाशी (भगवान्) नारायण क्षीरसागर में रहते हैं। (उनके निवास के लिए) एक लाख योजन विशाल रत्न-मण्डप (बना) है, जिसमें

ते मध्यमां छे शेष लांबा, जोजन साठ हजार,
पहोळा छे अधलक्ष, जोजन शय्यारूपे सार । २ ।
ते शेषशय्या विषे पोढचा, नारायण साक्षात्,
सच्चिदानंद स्वरूप सुंदर, अखिल जुगना तात । ३ ।
मुगट कुंडळ पीतपट, कटीबंध कंकण हार,
चतुर्भुज घनश्याम तन मणि कनक भूषण सार । ४ ।
अनंत शक्ति निज श्यामनी, लक्ष्मी सदा निष्काम,
ते चरणसेवा करे नित्ये, धरी मन अभिराम । ५ ।
एवा नारायणने शरणे आव्या, दुःख कहेवा देव,
गदगद गिराचित सजळ लोचन स्तुति करता एव । ६ ।
जय जय अनेक ब्रह्मांडनायक, पूरण ब्रह्म अनूप,
देववंदित देवपाळक, अगम वेद स्वरूप । ७ ।
जय विश्वंभर विश्वपाळक, विश्वरूप अनंत,
वनमाळी व्यापक विश्वपति, सर्वात्म कमळाकंत । ८ ।
जय जगतगुरू जग-तात मात, अनाथनाथ दयाळ,
करुणानिधि कैवल्यदायक, देवना प्रतिपाळ । ९ ।

करोड़ों सूर्यों का प्रकाश है । १ । उस (देदीप्यमान मण्डप) के मध्य में साठ हज़ार योजन लम्बा शेषनाग है । वह पचास हज़ार योजन सुन्दर शय्या रूप में बिछा हुआ है । २ । उस शेश-शय्या पर सच्चिदानन्द-स्वरूप, सुन्दर, अखिल जगत् के पिता, साक्षात् नारायण लेटे हुए हैं । ३ । भगवान् मुकुट, कुण्डल, पीत वस्त्र, कटिबन्ध (करधनी), कंकण और हार धारण किये हुए हैं । वे चतुर्भुजधारी श्याम (साँवले) शरीरधारी हैं । वे रत्न और सुवर्ण के सुन्दर आभूषण पहने हुए हैं । ४ । लक्ष्मी श्याम शरीरधारी अपने पति की अनन्त शक्ति (रूप) है । वह सदा निष्काम (रहती) है । सुन्दर (पवित्र) मन (धारण करने) वाली वह लक्ष्मी (भगवान् के) चरणों की नित्य सेवा करती है । ५ । देव दुःख कहने के लिए ऐसे भगवान् नारायण की शरण में आ गये । उनकी वाणी गद्गद थी और नेत्र अश्रुजल से युक्त थे । वे (भगवान् की) इस प्रकार स्तुति करते हैं । ६ । 'हे अनेक ब्रह्माण्डों के नायक, अनुपमेय पूर्ण ब्रह्म, तुम्हारी जय हो । हे देवों द्वारा वन्दित, देवों के पालक, अगम्य वेद-स्वरूपी भगवान्, तुम्हारी जय हो । ७ । हे विश्वम्भर, हे विश्वपालक, हे विश्व-रूप, हे अनन्त, हे वनमाली, हे सर्व-व्यापक विश्व-पति, हे सर्वात्म, हे कमला-पति भगवान्, तुम्हारी जय हो । ८ । हे जगद्गुरु, हे जगत्पिता

जय कमळलोचन कर्ममोचन, अखिल जीव-निकाय,
भक्तवत्सल भुवनसुंदर, सगुण निर्गुन राय। १०।
जय मुरमर्दन मधुसूदन, अखंड रूप उदार,
प्रतिपाळ गोसुर द्विज तणा, गुणरूप नाम अपार। ११।
जय मच्छ कच्छ वराह नरहरि, वामन परशुराम,
अवतार धरी दुष्टने भार्या, धर्मस्थापन काम। १२।
हवे प्रगट थई खळने संहारो, उतारो भू-भार,
हे नारायण तुजने अमो, नित्य नमुं वारंवार। १३।
एवी स्तुति सुरनी सांभळी, बोल्या श्रीपति देव,
गंभीर वाणी सागरमांथी, धुनी थई ततखेव। १४।
हे देव चिंता न करशो, हुं धरुं छुं अवतार,
अमो चार रूपे प्रकट थईशुं, अवधपुरी मोझार। १५।
दशरथ कौशल्या थकी हुं धरीश राम स्वरूप,
आ शेष ते लक्ष्मण थशे, मुज बंधु-धर्म अनूप। १६।

जगन्माता, अनाथों के नाथ, हे दयालु भगवन्, हे करुणानिधि, मुक्ति दाता, हे देवों के प्रतिपालक, तुम्हारी जय हो। ९। हे कमलनेत्र, हे अखिल जीव-समूह को कर्म से मुक्ति देनेवाले, हे भक्त-वत्सल, भुवन-सुन्दर सगुण और निर्गुण महाराज, तुम्हारी जय हो। १०। हे मुरमर्दन (मुर नामक दैत्य को कुचल देनेवाले भगवान् विष्णु), हे मधुसूदन (मधु नामक दैत्य को मार डालने वाले भगवान् कृष्ण अर्थात् विष्णु), अखण्ड रूप, हे उदार, गायों, देवताओं और ब्राह्मणों के प्रतिपालक, हे अपार रूपों और नामों के धारक भगवान्, तुम्हारी जय हो। ११। मत्स्य, कूर्म (कच्छप), वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम नामक अवतार धारण करके तुमने दुष्टों को मार डाला और धर्म की स्थापना का कार्य किया। हे भगवान्, तुम्हारी जय हो। १२। (हे भगवान्), अब प्रकट होकर दुष्टों का संहार करो (और) भूमि का (पाप रूपी) भार उतारो (अर्थात् पापियों का नाश करो)। हे नारायण, हम बार-बार तुम्हारा नमन करते हैं'। १३। देवों द्वारा किया हुआ ऐसा स्तवन सुनकर भगवान् श्रीपति बोले। तत्क्षण सागर में से (उनकी) वाणी की गम्भीर ध्वनि (उत्पन्न) हुई—'हे देवताओ, तुम चिन्ता न करो। मैं अवतार धारण करूँगा। अयोध्या नगरी में मैं चार रूपों में प्रकट हो जाऊँगा। १४-१५। दशरथ और कौसल्या से मैं राम (का) रूप धारण करूँगा। यह शेष बन्धु-धर्म का अद्वितीय रूप—मेरा बन्धु लक्ष्मण

सुदर्शन ते शत्रुघन, वळी शंख भरत प्रमाण,
एम चतुर मूर्ति प्रगट थईशुं, दुष्ट हणवा जाण । १७ ।
वळी पृथ्वीनो अवतार कहावे, जनक राजा जेह,
तेनी पुत्री जानकी, लक्ष्मी ते धरशे देह । १८ ।
ते माटे सुर सरवे तमो मुज साथे आवो त्यांय,
मर्कट वानर रींछ थई, अवतरो पृथ्वीमांय । १९ ।
हनुमंत शिवजी प्रगटशे, ब्रह्मा ते जांबुवान,
सूरज सुग्रीव, चंद्र अंगद, रषभ धरम समान । २० ।
अग्नि नळ ने नील वायु, सरभ रसना ईश,
धनवंतरी सुषेण ते, एम सकळ थाओ कीश । २१ ।
तमो प्रगट थाओ देव सरवे, गिरि वनमोझार,
हुंए पण थोडा दिवसमां, धरुं छुं अवतार । २२ ।
पूरवे कश्यप अदितिने आप्युं छे वरदान,
ते दशरथ कौशल्या थयां छे, अवधपुर स्वस्थान । २३ ।
नारायणनां वचन एवां सांभळी निरधार,
सुर सकळ निज लोके गया ते, करी जय-जयकार । २४ ।

रूप में उत्पन्न) हो जाएगा । १६ । इसके अतिरिक्त (मेरा) यह सुदर्शन चक्र शत्रुघ्न के रूप में और शंख भरत के प्रमाण (रूप) में (उत्पन्न) हो जाएगा । इस प्रकार, यह समझो कि दुष्टों को मार डालने के लिए मैं चार मूर्तियों अर्थात् रूपों में प्रकट हो जाऊँगा । १७ । इसके सिवा, जो जनक राजा पृथ्वी के अवतार कहलाते हैं उनकी पुत्री जानकी का शरीर (यह) लक्ष्मी धारण करेगी । १८ । इसके लिए तुम सब देव मेरे साथ वहाँ आओ । मर्कट, वानर, रीछ होकर तुम पृथ्वी में अवतरित हो जाओ । १९ । शिवजी हनुमान के रूप में प्रकट होंगे । ब्रह्माजी वह जाम्बवान् होंगे । सूर्य सुग्रीव के, चन्द्र अंगद के और धर्म (यम) ऋषभ के समान (रूप में) हो जाएँ । २० । अग्नि नल और वायु नील तथा रसेश्वर (वरुण) सरभ बनें । धन्वन्तरी सुषेण हो जाएँ—इस प्रकार तुम सब बन्दर हो जाओ । २१ । तुम सब देव पर्वत और वन में प्रकट हो जाओ । मैं भी थोड़े ही दिनों में अवतार ग्रहण करूँगा । २२ । पूर्वकाल में मैंने कश्यप और अदिति को वरदान दिया था । वे अयोध्या नगरी में अपने (उचित) स्थान पर दशरथ-कौसल्या (के रूप में उत्पन्न) हो गये हैं'। २३ । भगवान् नारायण

वलण (तर्ज़ बदलकर)

जय-जयकार करी तदा, सहु देव गया स्वस्थान रे,
हवे अजोध्यानी कहुं कथा, ज्यां प्रगटचा श्री भगवान रे। २५।

के ऐसे वचन सुनकर वे सब देव उनकी जयकार करके अपने लोक चले गये। २४।

तब भगवान् नारायण का जय-जयकार करके सब देव अपने-अपने स्थान गये। अब मैं जहाँ श्री भगवान् प्रकट हो गये, उस अयोध्या की कथा कहता हूँ।

*   *   *

अध्याय–९ (श्रवण-वध)

राग धनाश्री

दशरथ राजा पुण्य पवित्र जी,
कहुं संक्षेपे तेनां चरित्र जी,
रावणे मूक्यां बंन्यो त्यांहे जी,
विधिए पहोंचाडचां अवधपुर मांहेजी। १।

ढाल

अवधपुर मां राय दशरथ, राणी कौशल्या सती,
तेना आनंदमां दिन जाय छे, निजधर्म पाळे महामति। २।
पछे पुत्रने निज राज सोंपी, अज गया वनवास,
तपसाधना करी थोडे दिवसे, पाम्या स्वर्गनिवास। ३।

अध्याय–९ (श्रवण-वध)

राजा दशरथ पुण्यशील और पवित्र आचरणवाले थे। मैं उनका चरित्र संक्षेप में कहता हूँ। (कहा जा चुका है कि) रावण ने (दशरथ और कौसल्या) दोनों को वहाँ छोड़ दिया। वहाँ से विधाता ने अवधपुर में उन्हें पहुँचवाया। १। अयोध्या में राजा दशरथ और साध्वी रानी कौसल्या (रहते) हैं। उनके दिन आनन्द में बीतते जाते हैं। वे महामति (मान्) अपने-अपने धर्म का पालन किया करते हैं। २। पहले अपने पुत्र (दशरथ) को अपना राज्य सौंपकर अजराज वनवास करने

त्यारे दशरथ राज करता, नीति धरम विवेक,
पुत्रनी पेरे प्रजा पाळे, दया सत्य विवेक। ४।
एक केकै कन्या रायनी, शुभ रूप कपटी मंन,
बळवान निर्दय अति घणी, ते परणिया राजन। ५।
वळी नागकन्या सुमित्राने, परण्या पोते भूप,
बीजी सात सत कन्या वर्या, जेनुं महा मनोहर रूप। ६।
ज्ञानकळा ते कौशल्या, सुमित्रा भक्ति अनूप,
केकै निश्चे जाणजो, ए कपटवृत्ति रूप। ७।
त्रिगुणरूप विवेक मुरतिमंत दशरथ राय,
तेनां पावन जश अद्‌भुत प्राक्रम, कहेतां पार न थाय। ८।
धनुर्विद्या विशारद, रणपंडित शस्त्रप्रवीण,
शब्दवेधी विचिक्षण, सहु शत्रु कीधा क्षीण। ९।
पण प्रजा नव थई रायने, कंई पुत्रपुत्री रूप,
जोबनपणुं चाल्युं वही, चिंता करे छे भूप,। १०।

गये। तप:साधना करके थोड़े दिनों में वे स्वर्गवास को प्राप्त हो गये। ३। तब फिर नीति, धर्म के विवेक के अनुसार दशरथ राज्य किया करते। दया, सत्य और विवेक से वे प्रजा का पुत्र की तरह पालन किया करते। ४। कैकेयी नामक एक राजकन्या थी; वह रूप में तो शुभ (सुन्दर) थी (परन्तु) उसका मन कपटी था। वह अति शक्तिशाली, परन्तु निर्दय थी। राजा दशरथ ने उससे विवाह किया। ५। इसके सिवा राजा ने स्वयं सुमित्रा नामक नागकन्या से विवाह किया। उन्होंने अन्य सात सौ कन्याओं (लड़कियों) का भी वरण किया, जिनका रूप अति मनोहारी था। ६। कौसल्या तो (साक्षात्) ज्ञान-कला थी, सुमित्रा (मानो) अद्‌भुत भक्ति (की ही मूर्त्ति) थी। (और) यह निश्चय समझो कि कैकेयी कपटवृत्ति का ही रूप (मूर्ति) थी। ७। राजा दशरथ सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों से युक्त (प्रत्यक्ष) मूर्तिमान विवेक थे। उनकी पवित्र कीर्ति और अद्‌भुत पराक्रम का वर्णन करने में पार (अन्त) नहीं आए। ८। वे धनुर्विद्या विशारद, युद्ध-सम्बन्धी विद्या में पण्डित तथा शस्त्र-विद्या में प्रवीण थे। वे चतुर शब्दवेधी थे। उन्होंने सब शत्रुओं को दुर्बल (निस्तेज) बना डाला। ९। परन्तु राजा दशरथ के पुत्र व पुत्री के रूप में कोई सन्तान नहीं (उत्पन्न) हुई। उनकी युवावस्था (जवानी) बीतती (ढलती) चली।

शास्त्र पंडित एम कहे, पुत्र विना धिक संसार,
सूनुं मंदिर सुत विना, जेम दीप विण अंधार। ११।
प्राण विना ज्यम देह कहिये, नाथ विना ज्यम नार,
दया विण भक्ति जथा, ज्यम क्रिया विण आचार। १२।
शांति विना वैराग्य मिथ्या, संपत्ति धर्मरहित,
ज्ञान रहेणी विना जेवुं, सभा विण पंडित। १३।
वेदान्त विण ज्यम आत्मविद्या, बंधुरहित सनेह,
सतपात्र पाखे दान ज्यम, जळ विण सरोवर जेह। १४।
प्रजा ज्यम राजा विना, घृत लवण पाखे अंन,
राका विधु तरु फळ विना, संसार सुख निर्धन। १५।
हरिनाम-अंकित विना वाणी, मनोजय विण मुन्य,
पुत्र विना एम जाणजो, कुळ वंश सरवे शून्य। १६।

अतः राजा चिन्ता करते हैं (थे)। १०। शास्त्रों के ज्ञाता पण्डित यों कहते हैं—बिना पुत्र के (गृहस्थ के लिए) संसार धिक्कार करने योग्य (तिरस्कार करने योग्य) होता है। जैसे दीपक के बिना अन्धकार होता है, वैसे पुत्र (रूपी दीपक) के बिना गृह (रूपी मन्दिर प्रकाश से) शून्य अर्थात् दुःख रूपी अन्धकार से पूर्ण होता है। ११। जैसे प्राणों के बिना शरीर को व्यर्थ कहते हैं, जैसे पति के अभाव में नारी (शोभाहीन) होती है, जैसे भक्तिहीन दया (निरर्थक) होती है, जैसे पवित्र आचार के बिना करनी अर्थहीन होती है, वैसे ही पुत्रहीन गृह निरर्थक होता है। १२। जैसे (आत्मिक) शान्ति के अभाव में वैराग्य मिथ्या होता है, धर्म के बिना धन निरर्थक होता है, जैसे बिना पवित्र आचार के (जीवन) व्यर्थ होता है, जैसे पण्डितों के अभाव में सभा अर्थहीन होती है, वैसे ही पुत्र-हीन घर व्यर्थ होता है। १३। जैसे आत्मविद्या के अभाव में वेदान्त (का ज्ञान) व्यर्थ होता है, जैसे स्नेह के अभाव में बन्धु का होना व्यर्थ होता है, जैसे सत्पात्र को छोड़कर अन्य को दिया हुआ दान और जल के अभाव में सरोवर (का अस्तित्व) निरर्थक होता है, वैसे ही पुत्रहीन गृह व्यर्थ होता है। १४। (सुयोग्य) राजा के बिना प्रजा, घी और नमक के बिना अन्न, चन्द्र के बिना रात्रि, फल के बिना वृक्ष, धनहीन व्यक्ति के लिए संसार-सुख—ये सब जैसे अर्थहीन होते हैं, वैसे ही संतान-हीन गृह व्यर्थ होता है। १५। भगवान् के नाम से अंकित न हुई वाणी निरर्थक होती है। मन पर विजय (मनोनिग्रह) के बिना मुनि (का जीवन) व्यर्थ होता है। उसी प्रकार ऐसा समझो कि बिना

एम राय दशरथ करे चिन्ता, पुत्र न थयो पेट,
एक दिवस नृपने निद्रामांहे स्वप्न आव्युं नेह। १७।
जाणे बे पुरुष एक स्त्री मारी, स्वप्नामां निरधार,
झबकीने जाग्या रायजी, करता ते मन विचार। १८।
प्रातःकाळे वसिष्ठ गुरुने कही राये वात,
में त्रण जणनी स्वप्नमांहे करी शस्त्रे घात। १९।
त्यारे गुरु कहे भविष्य आगळ, थवानुं छे जाण,
पछी शांति अरथे राय दशरथे, कर्युं पुण्य प्रमाण। २०।
केटला दिन वीत्या पछी, मृगया गया वन राय,
कोई मृग हाथे नव चढचो, त्यारे दूर पंथे जाय। २१।
ते वनमांहे निशा पडी, त्यारे विमास्युं मनमांहे
एक सरोवरथी दूर, तरुवर तळे बेठा त्यांहे। २२।
ते समे ब्राह्मण श्रवण नामे, वृद्ध अंध मातपिताय,
ते फरे तीरथ-अटण करतो, धरि कावड काय। २३।
त्यारे तम निशामां तृषा लागी, वृद्धने तेणी वार,
कावड सर उपकंठ मूकी, गयो भरवा वार। २४।

पुत्र के कुल, वंश—सब शून्य हो जाता है। १६। राजा दशरथ इस प्रकार चिन्ता करते हैं (थे); (क्योंकि) सचमुच उनके कोई पुत्र नहीं (उत्पन्न) हुआ। (ऐसी स्थिति में) एक दिन नींद में राजा को एक स्वप्न आया (राजा ने स्वप्न देखा)। १७। समझो कि उन्होंने निश्चय ही सपने में दो पुरुषों को और एक स्त्री को मार डाला। (यह देखने पर) राजा चौंककर जागृत हो गये। वे मन में सोचते रहे। १८। सबेरे राजा ने गुरु वसिष्ठ से यह बात कही कि मैंने स्वप्न में शस्त्र से तीन लोगों का वध किया है। १९। तब गुरु कहते हैं कि आगे भविष्य में ऐसा होनेवाला है–यह जान लो। तदनन्तर राजा दशरथ ने (अरिष्ट की) शान्ति के लिए (शास्त्रों से) प्रमाणित पुण्यप्रद अर्थात् शुभ कर्म किया। २०। कितने ही (कुछ) दिन बीत जाने के बाद राजा दशरथ शिकार के लिए वन में गये। कोई मृग (पशु) उनके हाथ नहीं आया, इसलिए वे मार्ग में आगे दूर गये। २१। उन्हें वन में रात हो गयी; इसलिए वे मन में सोच में पड़ गये। तब वे एक सरोवर से कुछ दूर पेड़ के तले बैठ गये। २२। उस समय श्रवण नामक एक ब्राह्मण अपने बूढ़े और अन्धे माता-पिता को काँवर में रखकर तीर्थ-यात्रा करते हुए घूम रहा था। २३। तब उस समय अँधेरी रात में (उस) वृद्ध को प्यास लगी।

'मुन्निट्टि फलमुल मुनिवरुलार । यॆन्नडॆ नॆरुगनु नेवनंबुलनु
मी तपॆंबॆ तपंबु मी तपोवनमॆ । यी तपोवनमुल कॆक्कुडु तलप'
ननि पल्क नय्यितुलल्लन नगुचु । ननुवार दनुलत लरसोक गदिसि
तावि नूर्पुलचेत दालिमिदूलि । पोव नॊय्यन मुखांबुरुहंबुलॊत्ति
पलुकुल दळुकुल बाटलाटलनु । बिलुपुल सॊलुपुल बॆल्लिचि यतनि
हृदयंबु गरगंग निरि चन्नुगवलु ।गदियिंचि बिगियार गौगिळ्ळ मरपि
'यनघ पोयॆदमिक नाश्रमंबुनकु' । ननि विभांडकुदॆस नडरिन भीति
नरिगि चेरुवनुंडि रावनंबुनकु । नरविंद-लोचनलरिगिन पिदप
वारिंक नॆन्नडु वत्तुरो यनुचु । ना ऋश्यश्रृंगुंडु नटनिद्रलेक
या रात्रि वेगिंचि या मरुनाडु । ना रमणुलगन्न यचटिकेतेर ३६०

रोमपादुनि यिंटिकि ऋश्यश्रृंगुनि राक

नंदिय लमॊरयंग नसदु गौदीगॆ । लंदंद वडक रायंचल नडल
मगुवलु वच्चि या महितात्मु गांचि । नगुमॊगंबुल तोड नलुदट्ल जेरि

—'हे मुनिवर ! इससे पूर्व ऐसे फलों को मैंने किसी वन में, कभी नहीं जाना (देखा)। आपका तप ही (श्रेष्ठ) तप है। आपका तपोवन ही, विचार करने पर (प्रतीत होता है कि) इन तपोवनों से श्रेष्ठ है'। ऐसा कहने पर वे स्त्रियाँ मन्द-मन्द मुस्काती हुई, अवसर पा, अपनी तनुलताओं को उन (ऋष्यश्रृंग) के शरीर से थोड़ा-थोड़ा स्पर्श करातीं, सुगंधित उच्छ्वासों से उनके धैर्य को डिगातीं, धीरे-धीरे अपने मुखकमलों को (उनके मुख से) सटातीं, मधुर वचनों, मृदुल संगीत, क्रीडाओं (हाव-भाव) तथा मदभरे कटाक्षों से मोहित करतीं हुई उनके हृदय को रसार्द्र करने लगीं; अपने पीन (उन्नत) कुचों से आलिंगन-पाश में कसकर उन्हें विमूढ़ करती हुई बोलीं, 'हे अनघ ! अब हम (अपने) आश्रम में जाएँगी।' विभांडक के आगमन के भय से वे चली गईं और उस वन के निकट ही रहीं। उन कमलनयनी कामिनियों के जाने के बाद, ऋष्यश्रृंग ने, यह सोचते हुए कि अब न जाने वे (मुनि) पुनः कब आएँगे, सारी रात आँखों में ही (जागकर) बिता दी। उसके दूसरे दिन (वह) उस स्थान पर गये जहाँ उन सुन्दरियों को (पहले दिन) देखा था ॥ ३६० ॥

रोमपाद के घर ऋष्यश्रृंग का आगमन

पायलों की झंकार करती हुई, क्षीण (दुबली-पतली) लता के समान हिलतीं-डुलतीं, राजहंसों की गति से (वे) सुन्दरियाँ उस महितात्म

'मुनिवर! मा वनंबुनकु रावलयु' । ननिपल्क राककु ननुमतिंचुटयु
गनि चाल वॆलदुलु घनमुनि जूचि । मनसुलु गरगंग मऱि मऱि पलिकि
दम युपायंबुल दम विलासमुल । दमकंबु पुट्टिंचि, तरलाक्षुलंत
विस्तारपथमनि वॆऱचि पोवमिकि। हस्तपल्लवमुल नांदोळिक गनु
नॊनर दीमंबुल नॊक वितमृगमु ।गॊनितॆच्चु तॆऱगुनु गॊनि वच्चिरतनि
नतडु सॊच्चुटयुनु नय्यंगदेश । मतुलवर्षमुल, सस्यंबुल नॊप्पे
सकलसौभाग्यमुल्सललितंबुगनु । नकलंकमति तोड ना नृपुडुंडि
या मौनि गनुगॊनि यतिभक्तियुक्ति । नेमंबुतो बूज नॆम्मि गाविंचि ३७०
यनघुंडु दनकूतु ना राजु शांत । यनुदानि निच्चिन ना राजुनिंट
नतडुंडु दशरथुंडम्मुनि दॆच्चि । हितमति बुत्रकामेष्टि ना बरगु
क्रतुवम्मुनींद्रुचे गाविंचॆनेनि । सुतुल नल्वुर बहुश्रुतुल नुन्नतुल
नाततोन्नति गांचु, 'ननि चॆप्पॆ दॊलिय। नातोड दॊल्लि सनत्कुमारुंडु
अटुगान नीविंक ना ऋश्यश्रृंगु । बटुभक्तियुक्तिमै ब्रार्थिंचि तॆम्मु'
अनि चॆप्पि या सूतुडरिगिन पिदप । मनमुन संतोष ममतलु सॆलग

(महात्मा) को देखकर आईं और हँसती-विहँसती चारों ओर से (उन्हें) घेरकर बोलीं, 'हे मुनिवर ! हमारे वन में पधारिए'। ऐसा कहकर, (मुनि के) आने के लिए तत्पर होने पर, (वे) स्त्रियाँ उस श्रेष्ठ मुनि के मन को द्रवित करने वाली बातें बार-बार करके, अपने उपायों तथा हाव-भावों से, मुग्ध करने लगीं। इसके बाद, विस्तृत पथ को पार करने के भय से, (अपने) करपल्लवों की पालकी बनाकर, अनेक उपायों से एक अजनबी मृग को जिस प्रकार (एक शिकारी) लाता है, उसी प्रकार वे चंचल नयन वाली उन्हें (अंगदेश में) ले आईं। उनके प्रवेश करते ही उस अंगदेश में अतुल वर्षा होने लगी और शस्य की वृद्धि हो गई। सकल सौभाग्यों से संयुक्त होने पर सुललित ढंग से, अकलंकमति (वाला) राजा (रोमपाद) ने, उस मौनि का साक्षात् होने पर, बड़ी भक्ति और प्रीति से समुचित और सुचारु ढंग से उसकी पूजा की ॥ ३७० ॥

—निष्पाप (अंग-) नरेश ने शान्ता नामक अपनी पुत्री उन्हें दान की (और) उस राजा के घर (पर ही) वह (मुनि अब) रहते हैं। यदि दशरथ उस मुनि को (अपने यहाँ) लाकर, कल्याण के लिए पुत्र-कामेष्टि नामक क्रतु (यज्ञ) को उस मुनीन्द्र के द्वारा करायें तो (वे) चार बहुश्रुत और महान् पुत्र एवं समृद्धि को प्राप्त करेंगे। ऐसा ही मुझसे पूर्वकाल में सनत्कुमार ने कहा था। ऐसा है न, इसलिए तुम अब उस ऋष्यश्रृंग को विनय-भक्ति से प्रार्थना कर यहाँ ले आओ'।

ननुवरि दशरथुंडारोमपाद । जननाथु वीटिकि जनि ऋश्यश्रृंग मुनिपतिगनि म्रोक्किमुदमुतोननियें 'विनवय्य! मुनिचंद्र! विमलमानसुड! यनुवंद बुत्रुल नड्डुगुट केनु । मनमुन दलपोसि ममत नीकडकु गोंनकोंनि वच्चिचति; गोंनुमु नी'वनुचु। घनमुन गृपवुट्ट मरि नुतिसेसि ३८०
ऋतुवुन काचार्युगा वरियिंचि । यतुलित चतुरंतयानाढ्यु जेसि यतनि विरोध्यसाध्यकु नयोध्यकुनु। जतुरुडै तोड्तेंच्चे शांततोगूड वच्चुचो दूतलवलनु वीक्षिंचि । पुच्चि मुंदर वारि 'बुरमुनु नगरु वासवुपुरितोड वैभवंबोंप्प । गैसेयवलयुनु गड्वेग मीर' लनिपल्क वारुनु नरिगि पौरुलकु । विनिपिंप, जेसिरि विविधशिल्पमुलु दुंदुभिशंखादितुमुल नादंबु । लंदंद म्रोयग नंत भूपतियु मुंदुगा रथमेक्कि मुदमु सित्तमुन । जेन्दि शांतयु ऋश्यश्रृंगुंडु नडव बुरमुनकेतेंञ्चें बुरजनुल्सेयु । परममंगळततुल्परगगैकोंनुचु नीरीति ना ऋश्यश्रृंगुनि देंच्चि । भूरमणुंडंतिपुरमुन नुनिचि

ऐसा कहकर उस सूत के जाने के बाद, मन में प्रसन्नता और ममता के उमड़ आने पर, उपायज्ञ दशरथ उस रोमपाद जननाथ (राजा) के घर गये और मुनिपति ऋष्यश्रृंग का दर्शन कर उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके प्रसन्नता से बोले, 'हे मुनिचन्द्र ! विमलमानस ! मेरी विनय सुनिए। मैं मन में पुत्रों की कामना लेकर करुण भाव से आपके पास (बड़ी आशा लेकर) आया हूँ। (मेरी प्रार्थना को) आप अंगीकार कीजिए। ऐसा कहकर (मुनि के मन में) कृपा पैदा हो, (तदर्थ) और अधिक स्तुति करके--।। ३८० ।।

—यज्ञ के लिए (उन्हें) आचार्य (के रूप में) वरण किया। फिर अतुलित चतुरन्तयान (पालकी) में बैठा कर, शान्ता के साथ उन्हें, विरोधियों के लिए असाध्य अयोध्या को कौशल से (राजा दशरथ) ले आए। इसीबीच, उन्होंने दूतों के द्वारा (अयोध्या में) यह आदेश भेज दिया कि पुर (और) नगर को वासव (इन्द्र) की नगरी के समान वैभव-युक्त सजाया जाय। उन (दूतों) से नगरवासियों को (यह आदेश) मिलने पर, उन लोगों ने (नगर-वासियों ने) विविध शिल्पों से (नगर को) सजाया। दुन्दुभि, शंख आदि के तुमुलनाद जगह-जगह ध्वनित होने लगे। तब भूपति भी, आगे-आगे रथ पर आरूढ़, मन में मोद भरे, शान्ता और ऋष्यश्रृंग को साथ लिए पुर में पधारे और नागरिकों के द्वारा किए गये (स्वागतार्थ) परम-मंगल कार्यों को उन्होंने प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया। इस प्रकार उस ऋष्यश्रृंग को लाकर, भूरमण (राजा) ने अन्तःपुर में ठहराया और

विततार्घ्य पाद्यादि विधुलबूजिंचि। यतिकृतार्थुडनैतिननिसंतसिंचे ९०
नासमयंबुन ना राजसतुलु । कौसल्य मोदलुगा गलवारु वेड्क
नलुवोन्द रेनियानति बूनि चाल । नलरि संतसमुन नाशांतकपुडु
महितभूषण वस्त्रमाल्यादुलिच्चि । बहुविधंबुल वारि ब्रार्थिचिरंत
गौन्तकालमुनकु गुवलयजनुलु । संतोषमॆसग वसंतमेतेर
नडरेड्डु वेड्डुक ना ऋश्यश्रृंगु । कडकु भूपति वच्चि कड्डुभक्ति म्रौक्कि
'सन्नुतस्थिति नन्नु संयमिप्रवर! । चॆन्नोन्द जन्नंबु सेयिपवलयु'
ननि विन्नविंचिन 'नौगाक' यनुचु ।निनकुलोत्तमु जूचि यिट्लनि पलिकॆ
'वेगंबॆ तॆप्पिंपु विहितंबुलैन । यागसंभारंबुलन्नियु नधिप !'
यनवुड्डु दगुवारि 'नय्यै तॆरंगु । लोनर्रिपु' डनुचु नियोगिंप बनिचि
यखिलसंभारंबुलन्नियु दॆप्पिंचि । मखमुसूचुटकु सुमंत्रुनि बंपि४००
केकय क्ष्मानाथु गीर्तिसनाथु । ना काशिराजु नव्याहततेजु
जनकांगराजादि जननाथवरुल । ननवचरित्रुल नर्थि रप्पिंचि
मनुजनायकुड्डु सुमंत्रुतो ननियॆ । 'ननघुल वेदवेदांगपारगुल
गृहमेधुलगुवारि गृततंत्रभाष्य । महितार्थ निश्चयमतुल भूसुरुल

अर्घ्य-पाद्य आदि के द्वारा सविधि उनका पूजन कर अपने को अति कृतार्थ (सफल) माना और प्रसन्न हुए ।। ३९० ।।

—उस समय कौसल्या आदि महारानियों ने बड़े उत्साह से, राजा की आज्ञा लेकर, बड़े हर्ष के साथ उस शान्ता को श्रेष्ठ भूषण, वस्त्र, माला आदि देकर, नानाविधि से उसकी अभ्यर्थना की। कुछ दिनों के बाद संसार के प्राणियों को प्रफुल्लित करनेवाले वसन्त ऋतु का आगमन हुआ। तब बड़े उत्साह से, उस ऋष्यश्रृंग के पास भूपति ने आकर, अनन्य भक्ति से प्रणाम किया और विनय की, 'हे संयमिप्रवर (मुनि श्रेष्ठ)! आप श्रेष्ठ यज्ञ को मुझसे करवाएँ'। निवेदन करने पर 'ठीक है (ऐसा ही हो)' कहकर रविकुलश्रेष्ठ (दशरथ) से (मुनिवर) इस प्रकार बोले, 'हे अधिप ! यज्ञ के लिए निर्दिष्ट (आवश्यक) सारी सामग्री शीघ्र मंगवाइए'। ऐसा कहने पर (राजा ने) (आवश्यक) सभी प्रकार के कार्य पूरे करने के लिए सुयोग्य व्यक्तियों को नियोजित किया और सभी वस्तुएँ मंगवाईं। (पश्चात्) सुमंत्र को भेजकर——।। ४०० ।।

—कीर्त्तिमान केकयराज, अतुल तेजस्वी काशिराज, जनक, अंगराज आदि पुण्यचरित्र वाले जननाथवरों (श्रेष्ठ राजाओं) को यज्ञ देखने के लिए आमन्त्रित किया। मनुजनायक ने सुमन्त्र से कहा—'पुण्यात्मा वेदवेदांग-पारंगत, गृहस्थ, कृततन्त्रभाष्य के महितार्थों में निश्चय बुद्धि (रखने)

बरगु सुयज्ञु जाबालि गश्यपुनि । सुरुचिरात्मुनि वसिष्टुनि वामदेवु
रयमुन दोड्कोनिरम्मु नी' वनिन । ब्रियमुन नातंडु बेम्पार नरिगि
युरुभक्ति नंदर नोंगि दोडितेर । बरुवडि दा नर्घ्य पाद्यादुलिच्चि
निर्मलव्रतनिधि नियतार्थमतमु । धर्मार्थयुतमु गादगुमाट बलिके
'मुनुलार! कोडुकुलु मुनु नाकु लेमि। मनमुन दलपोसि ममत रेट्टिंचि
मित्रसूक्तुल नश्वमेधयागंबु । बुत्रुलकोरकुनै पुत्रकामेष्टि४१०
जेयंग नी ऋश्यश्रृंगु दोड्तेंच्चि । मी यनुग्रहमु गामिंचियुन्नाड'
ननवुडु ना वसिष्टादि संयमुलु । जननाथुमाटकु संतोषमंदि
'यिनकुलोत्तम! लोकहितमाचरिंप। दनयुलगोरु नीतलपोप्पु निंक
नश्वंबु विडुवु मी यश्वमेधमुन । विश्वरक्षकुलैन विक्रमोज्ज्वलुलु
नलुवुरु कोडुकुलु नरनाथ! नीकु ।गलिगेद' रनि पल्क गडु संतसिल्लि
सवनयोग्यंबैन जवनाश्वमरसि । भुवनपावनमूर्ति पूजिंचि नोसट
ब्रकटित बिरुदांक पट्टिकगट्टि । योकयेडु दनयिच्च नुर्वि जरिंप
समकट्टि विडिचे नश्वंबु रक्षिप । विमतोग्रुलगु सैन्यविभुलतो गूड

वाले भूसरों (ब्राह्मणों) को, सुयज्ञ जाबालि, कश्यप, सुरुचिरात्म वसिष्ठ और वामदेव आदि को तुम शीघ्र ही लिवा लाओ'। (आदेश मिलते ही) तब वह (सुमंत्र) प्रसन्न मन से गये और बड़ी भक्ति के साथ उन सभी को शीघ्रता से लिवा लाये। (राजा ने) शीघ्र ही स्वयं अर्घ्य-पाद्य आदि देकर (उनका स्वागत किया।) निर्मल व्रत-विधि के अनुसार तथा धर्मार्थ युक्त हो (वह) बोले, 'हे मुनियो ! (इससे) पूर्व पुत्रहीन होने की चिन्ता से प्रेरित (और) पुत्र-प्राप्ति की प्रबल कामना से उत्कण्ठित होने पर शुभचेता मित्रों की सलाह से अश्वमेधयाग तथा पुत्रों की प्राप्ति के लिए पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करने के लिए—।। ४१० ।।

—इन ऋष्यश्रृंग को मैं लिवा लाया हूँ और आपके अनुग्रह की कामना कर रहा हूँ'। ऐसा कहने पर वे वसिष्ठ आदि मुनि जननाथ (दशरथ) की बातों से प्रसन्न होकर बोले, 'हे भानुकुलोत्तम ! लोकहित करने के लिए पुत्रों की इच्छा का तुम्हारा विचार सर्वथा संगत है। अब अश्व को छोड़ दो। हे नरनाथ ! इस अश्वमेध से विश्वरक्षक, विक्रम में उज्ज्वल तुम्हारे चार पुत्र होंगे'। ऐसा कहने पर अत्यंत संतुष्ट होकर (राजा ने) यज्ञ के लिए योग्य जवनाश्व (तेज जानेवाले घोड़े) को चुनकर, उस भुवन-पावन-मूर्ति की पूजा करके, उस (घोड़े) के ललाट पर अपनी बिरुदांकित पट्टिका बाँधकर, एक वर्ष तक अपनी इच्छा से पृथ्वी पर विचरण करने के लिए, छोड़ दिया। (उस) अश्व की रक्षा

नंत वसिष्टादुलनुमतिसेय । वितगा शिल्पकोविदुल राविंचि
सरयुवुनुत्तरस्थलि यागशाल ।विरचिंपगा बंचे वेदोक्तसरणि४२०
मरियु नानादेश मनुजवल्लभुल । वरलु विप्र नृपाल वैश्य शूद्रुलनु
रप्पिंचे नंत वर्षमु पूर्णमैन । नेप्पटिमधुमाससमेतेर नृपुडु
चिरतपोनिधि ऋश्यश्रृंगुसम्मतियु। गुरुनियानतियु गैकोनि मंचिवेळ
स्पृहानु शांता ऋश्यश्रृंगुलतोड । निहित संभार वर्णित होमकुंड
सहितमै येकविंशति रम्ययूप । महितमै श्रौतधर्मक्रियाचार
विहितमै मायाप्रवीण दैतेय । रहितमै सकलाघ रहितमै योप्पु४२६—

दशरथुडु यागदीक्ष वहिंचुट

यागवाटमु सोच्चि, हयमु वच्चुटयु। यागदीक्ष वहिंचि यतिशुद्धि बोन्दि
मुनु वसिष्ठादुल मुनिजनोत्तमुल । घनुल ऋत्विक्कुलुगा वरियिंचि
सवनत्रयं बभीष्टवमु नोनर्चि । प्रविमल यूपाग्रबंधंबुलैन
जलचरंबुलरण्यचरमुलु विहग । मुलु नुरगंबुलु मोदलुगा नोप्पु४३०

के लिए अति पराक्रमी सेनापतियों को (नियुक्त किया)। (उसके बाद) वसिष्ठ आदि मुनियों की अनुमति से सरयू (नदी) की उत्तर दिशा में वेद-विधि के अनुसार यज्ञशाला का निर्माण करने के लिए (राजा ने) अनुपम शिल्पकारों को नियुक्त कर दिया। ॥ ४२० ॥

—फिर नाना देशों के मनुज-वल्लभों (राजाओं), (वहाँ के) विप्र, नृपाल (क्षत्रिय), वैश्य और शूद्रों को (भी) निमन्त्रित किया। इतने में वर्ष पूरा हुआ और फिर से मधुमास (वसन्त) आ गया। तब राजा ने चिरतपोनिधि ऋष्यश्रृंग की सम्मति (अनुमति) तथा गुरु की आज्ञा लेकर, अच्छी-वेला (अच्छे मुहूर्त) में, बड़े उत्साह से शान्ता और ऋष्यश्रृंग के साथ, निर्दिष्ट यज्ञोपकरणों तथा हवन-कुण्ड से युक्त, इक्कीस सुन्दर यूपों (स्तम्भों) से शोभायमान, श्रौत-धर्म-क्रियाचार विहित, माया-प्रवीण राक्षसों से रहित तथा समस्त पापों से रहित होकर शोभायमान—॥ ४२६ ॥

दशरथ का याग-दीक्षा लेना

—(उपरोक्त गुणों से युक्त) यज्ञभूमि में (दशरथ ने) प्रवेश किया। (यज्ञ के) अश्व के आते ही, यज्ञदीक्षा धारण कर, अति पवित्र होकर प्रथमतः वसिष्ठ आदि मुनिजन-श्रेष्ठों को, महात्माओं को, ऋत्विकों के रूप में वरण कर, प्रशस्त (सराहनीय) सवनत्रय (तीन यज्ञों) को पूरा किया (और) प्रविमल यूपस्तम्भों से बंधे हुए जलचर, वनचर, विहग, उरग (रेंगने वाले प्राणी) आदि— ॥ ४३० ॥

पशुवुल मुन्नूटि व्रथिताश्वमोकटि । विशसिंचि क्रतुकर्मवेदुलु व्रीति
नेमंत्रमुलतोड ने पललमुलु । गामिंचि व्रेलुवगा जेप्पुश्रुतुलु
नामंत्रमु तोड ना पललमुलु । गामिंचि वेल्चिरि कडगि ऋत्विजुलु
अनलुंडु सप्तजिह्वल व्रज्वरिल्ले । ननिमुषुल् दनिसिराहविरादिकमुल
ना यागदिनमुल नाकोन्नवाडु । नायासपडिन वाडरसिन लेडु
सारमृष्टान्न वस्त्रपटीरकनक । हीरभूषादि संतृप्तुले गानि
ये क्रियलंदुनु नेंडपडकुंड । नीक्रिय हयमेध मीडेरुटयुनु
वेनुक ज्योतिष्टोमविश्वजिदादि । घनयागततुलु सांगमुगा नोनर्चि
यप्पुडु दशरथुंडाऋत्विजुलकु । नोप्पुगा दक्षिणलोसगंग दलचि
यध्वर दक्षिणकै पूर्वदेश । मध्वर्युनकुनु ब्रह्मकु दक्षिणंबु४४०
बोनरंग बश्चिमभूमि होतकुनु । दनर नुत्तरमु नुद्गातकु निच्चे
निल नयोध्ययु दक्क नेल्ल देशमुल । नलरि यिच्चिन मुदमंदि ऋत्विजुलु
'नेप्पुडेलुदुमु नीविच्चन देश । मेप्पुडनुष्ठानमेमु सल्पुदुमु
येमेड देशंबुलेलुट लेड । भूमिकि वेलयिम्मु भूमीश! माकु'

—तीन सौ पशुओं तथा प्रख्यात यज्ञाश्व का वध किया। श्रुतियों में जिन-जिन मंत्रों के साथ जिन-जिन पललों (मांस) को प्रीतिपूर्वक आहुति देने की विधि बताई गई है, क्रतुकर्म को जानने वाले ऋत्विकों ने उन-उन मंत्रों के साथ उन-उन मांसों का, प्रेम के साथ हवन किया। अनल (अग्निदेव) सप्त-जिह्वाओं से प्रज्वलित हुए। देवता (उन) आहुतियों से तृप्त हुए। उस यज्ञ के दिनों में ढूँढने पर भी न कोई भूखा दीखा, न कोई संत्रस्त। सभी सारयुक्त मिष्ठान्न, वस्त्र, चन्दन, स्वर्ण, हीरे, भूषण आदि से (पाकर) संतृप्त थे। किसी भी कार्य में विघ्न के बिना, इस रूप में अश्वमेध (यज्ञ) के पूर्ण होने पर, दशरथ ने ज्योतिष्टोम, विश्वजित् आदि महान् यज्ञ-क्रियाओं को सांग रूप से पूर्ण किया और उन ऋत्विजों को श्रेष्ठ रूप से यज्ञ-दक्षिणाएँ देने का विचार किया। अध्वर्यु को अध्वर-दक्षिणा के रूप में (अपने राज्य का) पूर्वभाग, ब्रह्मा को दक्षिण देश, ।। ४४० ।।

—होता को पश्चिम का भाग, उद्गाता को उत्तर भाग दे दिया। अयोध्या को छोड़ बाक़ी सभी देशों को प्रसन्नतापूर्वक देने पर ऋत्विज प्रसन्न हुए और बोले—'आपके दिए देश पर शासन कब करें और कब (हम) अपने अनुष्ठान (आचरणीय कर्त्तव्य) का पालन करें? हम कहाँ और देश पर शासन करना कहाँ? हे राजन्, हमें इस भूमि का मूल्य दे दें'। ऐसा कहने पर (राजा ने) दस करोड़ स्वर्ण (मुद्राएँ), स्वर्ण की चौगुनी

ननवुड्डु बदिकोट्टुलगु सुवर्णमुलु । गनकंबु नलुमडि गलधौतचयमु
गोरंगदगु लक्षगोवुलनिच्चें । ना ऋश्यशृंगादुलैन ऋत्विजुलु
नवि वंचुकोनि मुदमंदिरि मरियु । ब्रविमलाध्वरकर्म परिचारकुलकु
नरनायकुड्डु सुवर्णमुलु गोटियुनु । वरभूषणंबुलु वलयु वारलकु
गामितार्थंबुलु गामिंचु वारि । केमि वाकुच्चिन निंपारनिच्चि
परग भूसुरुलकु भक्तितोम्रोक्कि । वरुस वारिच्चु दीवनलु गैकोनुच ४५०
ब्रकट दिव्यांबराभरणादुलोसगि । यकलंकचित्तुडै यवभृथंबाडि
श्रीमहितुड्डु ऋश्यशृंगुचे बुत्र । गामेष्टि जेयिंपगा नंत वच्चि
क्रममोप्प यागभागमुलु गैकोन्न । यमरुलारावणु नात्मलो दलचि ४५३

ब्रह्मकु देवतल मोर

ब्रह्म गनुंगोनि प्रणमिल्लि निलिचि । 'ब्रह्म नी वरशक्ति बंक्तिकंधरुड्डु
ब्रविमलाचारुल ब्रह्मर्षिवरुल । दिविजुल मुनुल बाधिंचु चुन्नवाड्डु
दारुण वरशक्ति दगिलि मा चेत । वारिजासन ! वाड्डु वारिंपबडड्डु
सुरगणंबुलतोड सुत्रामु बट्टि । परिभविंचुचु नेचु बाहुदर्पमुन
गन्धर्व यक्षादिगणमुल मुनुल । बंधिंचु साधुल बट्टि बाधिंचु

चाँदी और स्पृहणीय एक लाख गाएँ (उन्हें) दीं। ऋष्यशृंग आदि वे ऋत्विज उन्हें (अर्थात् उस धन को आपस में) बाँटकर सन्तुष्ट हुए। उस विमल यज्ञकर्म में प्रवृत्त परिचारकों (सेवकों) को नरनायक (राजा) ने करोड़ स्वर्णमुद्राएँ दीं। माँगने वालों को श्रेष्ठ आभूषण दिए। जिसने जो कुछ माँगा (जिस वस्तु की कामना की) राजा ने प्रेम से उन्हें वे वस्तुएँ दीं। सभी ब्राह्मणों को भक्तियुक्त हो प्रणाम किया और उनके आशीर्वाद प्राप्त करते हुए ॥ ४५० ॥

—उन्हें श्रेष्ठ दिव्य वस्त्र (और) आभरण देकर, अकलंक चित्त हो अवभृथ (यज्ञांत का) स्नान किया। (उधर) श्रीमहित (शोभा-सम्पन्न) हो (राजा के) ऋष्यशृंग के द्वारा पुत्रकामेष्टि करने पर, वहाँ आकर क्रमशः अपने-अपने यज्ञभाग प्राप्त करनेवाले देवताओं ने रावण के बारे में अपने मन में विचारा। ॥ ४५३ ॥

ब्रह्माजी से देवताओं की गुहार

—ब्रह्मा को देख, प्रणाम कर, खड़े हो, (देवताओं ने कहा)—'हे ब्रह्माजी ! आप के वर की शक्ति से पंक्तिकंधर (रावण) प्रविमल आचार-सम्पन्न (निष्ठावान्) व्यक्तियों, ब्रह्मर्षियों, देवताओं तथा मुनियों को सता रहा है।

कहते हैं कि ऐसे में कोई (इच्छाओं से) मुक्त प्रेमी ही आकाश के समान निर्लिप्त होकर प्रियतम (परमात्मा) के साथ मौज (आनन्द) मना सकता है ॥ ९० ॥

माया रचाई, कूड़ी रांदि कल्पत जी ।
तंहिमें मोहे मोहसाँ, सभ विश्व फासाई ।
व्रिले कंहि गुर्मुख खे, अन्भय में आई ।
सामी सफ़ाई, करे चढ़ियो चंग ते ॥ ९१ ॥

माया ने प्रपंच की झूठी क्रीड़ा रचाई है और उसमें सारे विश्व को मोह से आकर्षित करके फँसा रखा है । सामीजी कहते हैं कि किसी विरले गुरुमुख को ही यह समझ में आई है जिससे वह शुद्ध होकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो सका है ॥ ९१ ॥

माया सभि ग़ुलाम, कया जीअ जहान जा ।
पिटिनि कारण पेट जे, वड्रा वीर वर्याम ।
सामी बचिया के सूर्मा, निरविकल्पु निष्काम ।
जिनिखे रम्ता राम, ड्रिनो दर्सनु देहिमें ॥ ९२ ॥

माया ने संसार के सभी जीवों को अपना ग़ुलाम बना रखा है जिससे बड़े-बड़े दृढ़ वीर भी पेट के कारण इधर उधर भटक रहे हैं । सामीजी कहते हैं कि कुछ ऐसे निर्विकल्प एवं निष्कामी शूरवीर (व्यक्ति) ही, जिन्हें सर्वव्यापक राम (ब्रह्म) ने हृदय में ही अपना दर्शन दे दिया है, इस (माया) से बच सके हैं ॥ ९२ ॥

माया सिधि कयो, अण हूंदो सन्सारु सभु ।
स्वप्न में सामी चए, जींए नाना जीउ थियो ।
पाणु भुलाए पंहिजो, सन्से मंझि पियो ।
तड्रीं भर्मु वियो, जड्री जागी जुर्यो जोति साँ ॥ ९३ ॥

सामीजी कहते हैं कि जिस प्रकार जीव स्वप्न में नाना प्रकार के रूप धारण करता है, उसी प्रकार माया ने भी इस अस्तित्वहीन संसार को बनाया है (स्वप्न में देखे हुए झूठे रूपों की तरह ही यह संसार भी झूठा ही है, जिस प्रकार स्वप्न में वे झूठे रूप भी हमें सत्य प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार यह झूठा संसार भी हमें सत्य प्रतीत हो रहा है ।) अतः वह (जीव) अपने स्वरूप को भूलकर भ्रमित हो जाता है । पर जब वह जागृत होकर परमात्म-ज्योति से मिल जाता है तब उसका भ्रम नष्ट हो जाता है ॥ ९३ ॥

माया मंझि मुंझी पिया, सभि जीअ जहान जा ।
मरनि मति मर्म रे, रात्यूं ड्रींहं रुझी ।
सामी कंहि साधूअ जी, अविद्या आग बुझी ।
जंहिंखे ग़ाल्हि ग़ुझी, सतिगुर ड्सी स्वरूपजी ॥ ९४ ॥

संसार के सब जीव माया में उलझे हुए हैं। वे निर्लज्ज तथा बुद्धि-हीन हो दिन-रात (माया में) मस्त होकर नष्ट हो रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि उसी साधु की अविद्या रूपी अग्नि बुझ सकी है जिसे सतगुरु ने (परमात्मा के) स्वरूप की रहस्य भरी बात सुझा (समझा) दी है ॥ ९४ ॥

माया मंझि मवास, मूर्ख रहनि मति रे ।
इस्थति ज्ञाणी पाणखे, ऊन्ही रखनि आस ।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, थो-सामी ग़णे स्वास ।
लटे सभि लबास, खाधा जंहिं ख़याल साँ ॥ ९५ ॥

मूर्ख (अज्ञानी मनुष्य) बुद्धिहीन होकर माया में घंमडी बने रहते हैं, वे अपने कन्धे पर सवार उस मृत्यु को नहीं देख पाते जो उनके (मनुष्यों के) श्वास गिन रही है तथा जिसने विचार मात्र से ही कितने ही शरीररूपी वस्त्र मिट्टी (नष्ट) कर दिये हैं ॥ ९५ ॥

माया मोहु रचियो, कूड़ो कल्पत काल जो ।
तंहिं में जग़ु तद्रूपु थी, नाना भांइ नचियो ।
को साधू जनु सूर्मो, बला खों बचियो ।
आतम सुखु सचो, सामी माणे सर्वगति ॥ ९६ ॥

माया ने काल तथा प्रपंच का झूठा मोह रचा है जिसमें सारा संसार भ्रमित होकर, नाना प्रकार से नाच रहा है। सामीजी कहते हैं कोई शूरवीर साधु ही इस नागिन से बचकर सच्चे शाश्वत आत्मानन्द को भोग पाता है ॥ ९६ ॥

माया मोहे मति मोग़ो कयो माणुहुनि खे ।
भुली भवनि पाणहीं, खणी साणु खप्ति ।
सामी रहे सम सदा, को आशिकु इस्थति ।
जाग़ी शिवु शक्ति, ड्रिठो पाण जहान में ॥ ९७ ॥

माया ने मनुष्यों की बुद्धि को आकर्षित कर, उन्हें मूढ़ बना दिया है, अतः वे अपने को भूलकर कष्टपूर्वक उधर-उधर भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि वह स्थिर प्रेमी ही सदैव सम रहता है जिसने जागृत होकर (ज्ञान प्राप्त कर) परमात्मा की सत्ता को संसार में प्रत्यक्ष देखा है (जिसे संसार के सभी प्राणियों में एक ही परमात्मा के दर्शन होते हैं।) ॥ ९७ ॥

माया मंडे मंडाणु, मोहे मारे सभखे।
कंहिखे छद्दे कीनकी, ख़ाली ख़ुशीअ साणु।
रहे अलेपु आकास जाँ, को सामी सन्तु सुजाणु।
पाण वराए पाणु, जाग़ी द्रिठो जंहिं ज्योति में ॥ ९८ ॥

माया ने नाना प्रकार के ठाठ रचकर, सब को आकर्षित कर नष्ट कर रखा है। उसने सभी को वास्तविक (सच्चे) आनन्द से वंचित कर रखा है। सामी जी कहते हैं, वही सज्जन सन्त आकाश की भाँति (माया से) निर्लिप्त रह सकता है जिसने जागृत होकर, अपने अहं से हटकर, अपने स्वरूप को उस ज्योति में देखा है ॥ ९८ ॥

माया मंझि मुक्ति व्रिले को गुर्मखु रहे।
जंहिखे द्दसी सतिगुरूअ, जुर्बे जी जुग़ति।
द्देई कंडि कल्प खे, चेतनु कयांई चिति।
अन्भय सुख अमिति, सामी पाए सम थियो ॥ ९९ ॥

सामीजी कहते हैं कि वही विरला गुरुमुख भक्त ही माया से मुक्त रहता है जिसे सतगुरु ने (परमात्मा से) मिलने की युक्ति बता दी है। उसने प्रपंच को ताला लगाकर (प्रपंच से मुख मोड़कर) अपने चित्त को चेतन (ज्ञानवान्) बना दिया है, तथा सम होकर अनंत आत्म-सुख की अनुभूति कर रहा है ॥ ९९ ॥

माया सभ मोही, ख़लिक़ पंहिंजे ख्यालसाँ।
भुलाए भग़वन्त खों, द्रोहु करे द्रोही।
सामी बचियो को साध संगि, आशिकु अद्रोही।
ब्रोध रूप बोही, खेती जंहिं ख़ामोश साँ ॥ १०० ॥

माया ने अपने आकर्षण से संसार के लोगों को आकर्षित कर उन्हें परमात्मा से अलग कर दिया है अतः वे अपराधी के समान अपराध करते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि वही दृढ़ प्रेमी साधुओं के संग से इस माया से बच सका है, जिसने शान्त होकर अपने (हृदय रूपी) खेत में बोध या

उपदेश रूपी बीज बोया है (जिसने हृदय में उपदेश का चिन्तन एवं मनन किया है।) ॥ १०० ॥

त्याग़ी वैराग़ी, माया सभि मस्तानु कया।
सामी को व्रिले बचियो, गुर्मुखु वद्रभाग़ी।
द्रिठो जंहि जाग़ी, पंहिंजे अख्यें पाण खे ॥ १०१ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने त्यागी, वैरागी आदि सबको मदमत्त बना दिया है। कोई ऐसा विरला भाग्यशाली गुरुमुख ही इससे बच सका है, जिसने जागृत होकर अपनी आँखों से अपने आप (स्वरूप) को देखा है ॥ १०१ ॥

द्राढी द्रेवाली, माया द्राइणि द्रुन्दरी।
सामी कयो जंहि सभखे, कृपणु कंगाली।
व्रिले को गुर्मुख रहे, खलि-खलि खों ख़ाली।
लूअँ लूअँ में लाली, प्रत्क्ष द्रिठी जंहि पीअजी ॥ १०२ ॥

सामीजी कहते हैं कि बड़े-बड़े दांतों वाली डाइन माया ने सबका दिवाला निकाल दिया है, तथा उन्हें कृपण एवं कंगाल बना दिया है। ऐसा कोई विरला गुरुमुख ही, जिसने कि रोम-रोम में (सर्वत्र) अपने प्रियतम की सत्ता को प्रत्यक्ष देखा है, इसके (माया के) झंझट से मुक्त रह सका है ॥ १०२ ॥

द्राढी द्रेवाली, माया द्राइणि द्रुन्दरी।
सामी कयो जंहि सभखे, समुझ खसे ख़ाली।
को गुर्मुख ज्ञानी रहे, खलि-खलि खों ख़ाली।
लूअँ लूअँ में लाली, प्रत्क्षु द्रिठी जंहि पीअजी ॥ १०३ ॥

सामीजी कहते हैं, बड़े-बड़े दाँतों वाली डाइन माया ने सबका दिवाला निकाल दिया है। उसने सबकी बुद्धि नष्ट करके उन्हें रिक्त (खोखला विचारहीन) बना दिया है। ऐसा कोई ज्ञानी गुरुमुख ही जिसने रोम-रोम में (सर्वत्र) अपने प्रियतम की सत्ता को प्रत्यक्ष देखा है, इस माया के झंझट से बच सका है ॥ १०३ ॥

द्राठी द्रेवाली, माया द्रिठी मोहिणी।
लुटे कयाईं लोक जो, ख़ज़ानो ख़ाली।
सामी को सूरो बचियो, आशिकु अब्दाली।
पूरे गुर पाली, दया जंहिते दर्स जी ॥ १०४ ॥

मोहिनी माया सबका दिवाला निकाल देती है, उसने लोगों के (ज्ञान रूपी) ख़ज़ाने को लूटकर उसे रिक्त कर दिया है (लोगों ने अपनी सारी आयु माया के पीछे पड़कर नष्ट कर दी है)। सामीजी कहते हैं कि दुःखों को सहन करने वाला ऐसा दृढ़ प्रेमी ही, जिस पर कि पूर्ण गुरु ने कृपा की है तथा (परमात्मा) का दर्शन कराया है, इस (माया) से बच सका है ॥ १०४ ॥

ॾाढी देवाली, माया मुठी मोहिणी।
जंहिं फुरे सभि फक़ीर कया, खलि खलि साँ ख़ाली।
सामी को साबितु रह्यो, आशिकु अकाली।
पूरे गुर पाली, दया पंहिंजे सिषते ॥ १०५ ॥

मोहिनी माया ने सबको लूटकर, सबका दिवाला निकाल दिया है तथा उन्हें फ़कीर बना दिया है। (माया के झंझट में सभी अपना मानव-शरीर नष्ट कर बैठे हैं)। सामीजी कहते हैं कि ऐसा कोई अकाली (जिसने काल को जीत लिया है) प्रेमी शिष्य ही, जिस पर कि पूर्ण (पहुँचे हुए) गुरु ने दया की है, वही इससे बच सका है ॥ १०५ ॥

ॾिए ॾेखारी, माया मोहे मूढ़नि खे।
समुझ खसे सामी चए, करे दिलि कारी।
रहे अलेपु आकास जाँ, को भाग्यवानु भारी।
ज़ंहिंखे पीआरी, सतिगुर सुर्की सार जी ॥ १०६ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने तमाशा दिखाकर मूर्खों को मोह लिया है। वह (मनुष्यों की) बुद्धि को हरकर, उनके हृदय काले कर देती है (कपट से उनका मन मलीन कर देती है।) अतः ऐसा कोई महान् भाग्यशाली ही, जिसे कि सतगुरु ने आत्मरस का घूँट पिलाया है, इस (माया) से आकाश की तरह निर्लिप्त रह सकता है ॥ १०६ ॥

ॾिठा सभि मगनु पाणोवाणे हाल में।
मने वेठा मन में, नाना भांइ मननु।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, रहे अलेपु अननु।
जंहिं जीत्यो मनु, सामी सन्तनि साँ मिली ॥ १०७ ॥

सामीजी कहते हैं कि सब (मनुष्य) अपने ही हाल में मस्त दिखाई देते हैं, वे अपने मन में नाना प्रकार के सोच लिए बैठे हैं। करोड़ों में से ऐसा कोई एक व्यक्ति ही, जिसने कि सन्तों से मिलकर, अपने मन को जीत लिया है, निर्लिप्त एवं एकरस रह सकता है ॥ १०७ ॥

ड्रिठा सभि दुःखी, सान्ति वराए जगत्र में ।
ज्ञानी ध्यानी ग्रहस्ती, माया पात्र मुखी ।
कंहिंखे छड्रे कीन की, चिन्ता चाह भुखी ।
थियरा सन्त सुखी, सन्से रे सामी चए ।। १०८ ।'

सामीजी कहते हैं कि संसार में सभी (मनुष्य) शान्ति के सिवा दुःखी दिखाई देते हैं। ज्ञानी, ध्यानी तथा गृहस्थ, सभी माया में फँसे रहते हैं। चिन्ता तथा इच्छा की भूखी (माया) किसी को भी नहीं छोड़ती; केवल सन्त ही भ्रम-रहित हो सुखी हो सके हैं ।। १०८ ।।

अन्धनि खे ओलो, माया ड्रिनो मोह जो ।
पाए भवनि पाणहीं, चिन्ता जो चोलो ।
सामी सुजागनि खे, कोन्हे भय भोलो ।
क्षमा खटोलो, पाए सुम्हयां पद में ।। १०९ ।।

माया ने अन्धों (अज्ञानी व्यक्तियों) को मोह में फँसा रखा है अतः वे चिन्ता रूपी चोला पहनकर (चिन्ता में डूबे) भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं, पर जो जागृत (ज्ञानवान) हैं उन्हें किसी प्रकार का भय एवं भ्रम नहीं है; वे आत्मपद में आनन्द की सेज पर सो रहे हैं (आत्म-आनन्द में लीन हैं।) ।। १०९ ।।

करे छड्रियो छलु, माया मोहिया जीअ सभि ।
कंहिंखां थिए कीनकी, पापिणि पासो पलु ।
को नेंही व्युसि निकिरी, निराधार निर्मलु ।
जंहिखे बेहदि ब्रलु, सामी ड्रिनो सतिगुरूअ ।। ११० ।।

माया ने छल से सभी जीवों को आकर्षित कर रखा है, यह पापिन, एक क्षण के लिए भी किसी का पिंड नहीं छोड़ती। सामीजी कहते हैं कि जिसे सतगुरु ने अनन्त शक्ति दी है, वही निर्मल स्वतन्त्र प्रेमी इस माया जाल से निकल सकता है ।। ११० ।।

करे जीअ कर्म, फाहीअ फाथा पाणहीं ।
सदा रहनि सन्सार जे, विसा मंझि वहम ।
को आशिकु चढ़ियो अछते, छड्रे कूड़ा कम ।
सामी ड्रिसे सम, अन्दरि ब्राहरि आतमा ।। १११ ।।

जीवों ने कर्म कर स्वयं ही अपने आप को (कर्म रूपी) फाँसी में फँसा दिया है, वे संसार के भ्रमों में सदैव खोये हुए से रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि कोई प्रेमी ही (संसार के) झूठे कर्मों को छोड़कर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, एवं एक ही आत्मा को बाहर तथा भीतर समान रूप से देख पाया है ॥ १११ ॥

करे ठगाई ठठु, माया मोहिया जीअ सभि।
भवनि नितु भवण में, रखी हैबत हठु।
ईहा ग़ाल्हि सही करे, ग्याति गुरूअ खों वठु।
त कढी सम्ता मठु, सामी करेई शुधि मनु ॥ ११२ ॥

माया ने बाह्याडम्बर से सब जीवों को आकर्षित कर रखा है, अतः वे आतंक और अभिमान में सदैव इस संसार में भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं (ऐ मनुष्य) यह बात जानकर तू गुरु से ज्ञान ले, वही तेरे हृदय की समस्त कालिमा मिटाकर, उसे शुद्ध करेगा ॥ ११२ ॥

करे नानां छल, माया मोहे सभखे।
कंहिखे छड़े कीन की, खाली बिना ख़लल।
के नेंही व्यसि निकिरी, निरासा निर्मल।
जिनिखे समुझ सब़ल, सामी ड्रिनी सतिगुरूअ ॥ ११३ ॥

अनेक प्रकार के छल-बल दिखा करके माया सबको आकर्षित करती है। वह किसी को भी बुराई से ख़ाली नहीं छोड़ती (सबकी बुराई करती रहती है)। सामीजी कहते हैं जिन्हें सतगुरु ने तीक्ष्ण बुद्धि दी है, वही निर्मल तथा आशा-वासना-रहित प्रेमी इस (माया) से बच पाता है ॥ ११३ ॥

अण हूंदी रांदि रची, माया मोह ममत्व जी।
तंहि में मति मर्म रे, मूर्ख मरनि पची।
को प्रेमी मिल्यो पीअ सां, बला खां बची।
जंहिखे समुझ सची, सामी ड्रिनी सतिगुरूअ ॥ ११४ ॥

माया ने मोह और ममता का जो अस्तित्वहीन खेल रचा है, उसमें मूर्ख बुद्धिहीन ही निर्लज्ज हो कर पचते (अर्थात् डूबते और) मरते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि जिसे सतगुरु ने सत्य को समझने की शक्ति दी है, वही प्रेमी इस माया रूपी नागिन से बच कर प्रियतम से मिल पाता है ॥ ११४ ॥

अण हून्दी हर्कत, माया रचे रासि की ।
तंहिमें लोक लुढ़ी विया, मूर्ख मन जे मत ।
आशिक चढ़िया अछते, लिवँ सां हणी लत ।
कटे सभ कल्पत, सीतलु थिया सामी चए ।। ११५ ।।

माया ने अस्तित्वहीन बाज़ी (यानी खेल) रचकर तैयार किया है, जिसमें कितने ही मूर्ख मन के विचारों (मनोरथों) में पड़कर बह गये हैं । सामीजी कहते हैं पर कुछ प्रेमी भक्त ही प्रेम के वशीभूत होकर, माया को ठुकरा कर, भ्रमों को काटकर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होकर शान्त हो सके हैं ।। ११५ ।।

अण हूंदी रांदि रची, नारायण नानत जी ।
तंहिमें मोआ केतिरा, मुर्ख लोक पची ।
पांदु खणी पधिरी कई, कंहि औधूत अची ।
जंहिखे समुझ सची, सामी ड्रिनी सतिगुरूअ ।। ११६ ।।

नारायण ने भेद (वास्तव में आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं, पर ज्ञान के अभाव में यह भेद साफ़ दिखाई देता है) का अस्तित्वहीन खेल रच रखा है, जिसमें कितने ही मूर्ख (अज्ञानी मनुष्य) पचते (डूबते और) मरते हैं । सामीजी कहते हैं, जिस अवधूत (प्रेमी) को सतगुरु ने सच्ची बुद्धि (सच्चा ज्ञान) दी है वही अज्ञान के इस आवरण को हटाकर वास्तविक रहस्य का पता पा सका है ।। ११६ ।।

खिल सां मति खसे, माया वदी जीअ जी ।
दौड़े पंहिजो पाणहीं, फाहीअ मंझि फसे ।
तंहिखे ड्रिसे कीन की, जो हाज़ुरु हरि वसे ।
जे सतिगुरू राह ड्रसे, त सुखी थिए सामी चए ।। ११७ ।।

माया ने खेल ही खेल में जीव की बुद्धि हर ली है, जिससे वह माया-जाल में फँसकर, स्वयं ही भटक रहा है । सामीजी कहते हैं कि वह (जीव) सर्वव्यापक परमात्मा को नहीं देख पाता, पर जब उसे सतगुरु रास्ता सुझा (बता) देता है तब वह सुखी हो जाता है ।। ११७ ।।

काया ऐं माया, कूड़ी सभि कल्पत जी ।
जीँए फोटो जल में, दर्ख़त जी छाया ।
जेके जगि आया, से सामी रहिया कीन की ।। ११८ ।।

अंताकालमुत्तमभोग भूमिस्थितिं नाल्कु कोटि कोटि सागरोपममनुक्रमदिं कुंदुत्तुं बंदनंतरं सुषममेंबेरडनेय कालद मध्यमभोग भूमिस्थितियोळ्—

तनु नाल्सासिर विल्निडि-
दॆनिक्कुमायुष्यमॆरडु पळितोपममं
दिन मनुजरक्ष फलदनि-
तॆनिप रसायनमनॆरडु दिवसक्कुण्बर् ।। ६७ ।।

मत्तमाकालं मूरु कोटि कोटि सागरोपमं कळिदिंबळियं सुषमदुष्षममॆंब मूरनॆय कनिष्टभोग भूमिस्थितियादुदंदिन मिथुनंगळ्—

अळविय लॆक्कं तम्मोळ्
पळितोपमागॆ देहमिर्छासिर विल्
बळॆयॆ सुधासारमना-
मळकफल प्रतिममं दिनांतरमुण्बर् ।। ६८ ।।

मत्तमा जघन्य भोगभूमिप्रवर्तनमॆरडु कोटि कोटि सागरोपमद कडॆय पळितोपदॆंटनय भागमुळिय बळियं कुलधरावतारमक्कुमॆदंतॆने—

अज्ञानत्रय रहितर्
विज्ञान धरर् विदेहदिं बंदधिक
प्रज्ञर पुट्टुवरी नॆल-
नाज्ञमुद्रितमॆनल् चतुर्दश मनुगळ् ।। ६९ ।।

इस तरह उस काल के उत्तमभूमिस्थिति से चार करोड़ कोटि सागर वर्षों के बीत कर घट जाने के पश्चात् सुषम नामक द्वितीयकाल के मध्यम भोगस्थिति में मनुष्यों का शरीर चार हजार धनुष जितना लंबा था और आयुष्य दो पळित जितना हुआ। वे दो दिनों में अक्षफल (बहेड़ा) जितना आहार लेते थे। ६७ इस तरह तीन करोड़ कोटि सागर वर्षों के बीतने के बाद यह काल विषम दुष्षम नामक तीसरी कनिष्टभोग-भूमि-स्थिति को प्राप्त हुआ। तब के मनुष्यों की आयु एक पळित थी। उनका शरीर दो हजार धनुष जितना लंबा था और वे एक आँवले जितने आहार का सेवन करते थे। ६८ यह काल दो करोड़ कोटि सागर वर्षों का था। एक पळित का १/८ वाँ अंश शेष रहा तो कुलधरों का अवतार इस तरह हुआ मानो अज्ञानरहित हो विज्ञानधरों ने एवं अधिक प्रज्ञधारी चौदह मनुओं ने इस भूमि को अपने आज्ञावश में मानकर जन्म लिया हो। ६९ उनमें प्रतिमुनि ज्येष्ठ (बड़ा)

अल्लि मॊदल कुलधरं प्रतिश्रुतियॆंबं—
बलवर्प कालपुरुषन
कलधौत विशाल कर्णकुंडल युगमं
गॆलॆवंदु सूर्य शशि मं-
डलमासुरमागॆ गगनदॆरडुंकॆलदॊळ् ।। ७० ।।

अवं काणलॊडमंदिन युगळमुत्पात युगळमॊगॆदुदॆंदु भीतमप्पुदुं ज्योतिरंग तरू तेजोभंगदिं काणलादुविवु चंद्रादित्य विमानंगलॆंदु-मॊळविल्लिलदित्तलिंतॆ तॊर्कुमिवर्कॆ बॆर्चदिरिमॆंदवर मनद संकॆयं कळॆदनातनिं बळियमॆरडनॆय कुलधरं सन्मतियॆंबं—
किसुसंजॆ पर्वॆ मर्वं-
र्विसॆ तारानिकरमॊगॆयॆ बॆल्कुत्तर् बॆ-
क्कसमुत्तर् भयरसदिं
दॆसॆगॆट्टर् कंडदृष्ट पूर्वमनार्यर् ।। ७१ ।।

अंतु भयस्थरादरादार्यरं कंडु सूर्य किरणमस्तमय समयदॊळ् तप्त तपनीयमयमॆनिप्प निषद नगद नॆगॆद कॆंबॊळपिनॊळ् पळंचॆ रंजिसिद संजॆ परॆयॆ कविद कळ्तलॆयॊडनॆ ताराग्रह नक्षत्रं तलॆदोरूगुमिल्लिलदित्तलहोरात्र भेदमक्कुमॆंदवर मनोविषादमं कळॆदनातनिं बळियं मूरनॆय कुलधरं क्षेमंकरनॆंबं सिंह शरभ सार्दूल

था।—उसके जीवनकाल में परिभ्रमण करने वाले कालपुरुष के सोने चाँदी से निर्मित कर्णकुंडलों का प्रकाश सूर्यचंद्र-मंडलों के तेज को फीका करता हुआ आकाश के दोनों ओर व्याप्त हुआ। ७० उसे देखकर लोग भयभीत हुए। कुलधर ने यह कहकर लोगों को सांत्वना दी कि ये सूर्य चंद्र हैं और ये अब हमेशा दिखाई देते रहेंगे। द्वितीय कुलधर का नाम था सम्मति। उसके काल में सूर्यास्त के पश्चात् फैले अंधकार को एवं नक्षत्रों को चमकते देखकर लोग आश्चर्य चकित तथा भयभीत हुए। ७१ इस तरह भयभीत आर्यों को देखकर उसने यह कहकर उनकी घबराहट को दूर किया कि—"अस्तमान के समय सूर्य-किरणें तपे हुए सोने के समान दिखाई देनेवाले निषद (निषध) पर्वत पर गिरती हैं और उनकी आभा से काँपने पर संध्या समाप्त होकर अंधकार फैल जाता है और नक्षत्र दिखाई देते हैं। अब से रात और दिन का भेद हो जायगा।" सम्मति के बाद तृतीय कुलधर का नाम था क्षेमंकर। क्षेमंकर के समय

व्याळ मृग मिथुनंगळ् कालस्वभावदिं ऋजु स्वभावमं पत्तुविट्टु
विषम स्वभावमनप्पुकेय्वुदुं—

विपरीतमाद मृगकुल-
दुपद्रवं निमगे दंड पाशादिगळि-
दपहरिसुगुमेंदार्य-
गुपदेशंगेय्दु कळेदनवरेंदेंवळिलं ।। ७२ ।।

आर्तनिं बळियं नाल्कनेय कुलधरं क्षेमंघरनेंबनंधकारमप्पुदुं
प्रजेगुपद्रवमं क्षुद्र पशुमृग युगंगळोंडरिसे—

रविरश्मिगळि पुट्टिसि
रविकांतोपल कृशानुवं कोळ्मिगमं
दिवसदवसान समयदों-
ळवनंजिसुवोंदुपायमं प्रजेगित्तं ।। ७३ ।।

आर्तनिं बळियमय्दनेय कुलधरं सीमांकरनेंबं कल्पतरु-
गळल्पफलदंगळाग भोगभूमिजर तमतमगे नेरेयवेंब संकल्पदिं—

ओवोंर्वर सुर तरुगळ
नोरोंर्वरिवेंम्म वेंबुदुं पूर्वं स्वी-
कार व्यवस्थे निले सा-
धारण सीमाविवादमं बारिसिदं ।। ७४ ।।

आर्तनिं बळियमारनेय कुलधरं सीमंधरनेंबं—

सिंह, शरभ, शार्दूल, सर्प, मृग आदि जो अब तक ऋजु (सरल) स्वभाव के थे जब क्रूर बनने लगे तो—उनके उत्पात के निवारण के निमित्त लोगों को दंडपाशों का उपयोग बनाकर उनके दुःख को दूर किया। ७२ चतुर्थ मनु क्षेमंधर के शासनकाल में क्षुद्रमृगों ने रात के समय प्रजा को सताना शुरू किया तो—सूर्य-किरणों से सूर्यकान्त शिलाओं का निर्माण करके, उन्हें रगड़कर अग्नि उत्पन्न करने का उपाय बनाया। ७३ सीमांकर पाँचवां कुलधर हुआ। उसने भोग-भूमि के लोगों की माँग को उस काल में अल्प फल देनेवाले कल्पतरु पूरा नहीं कर सकते—यह सोचकर तथा यह कहकर सीमाविवाद का निवारण किया कि कल्पतरु सबका है और इसे लेकर 'हमारा-तुम्हारा' का कोई झगड़ा नहीं होना चाहिए। ७४ छठा कुलधर हुआ सीमंधर। उसने संकुचित प्रवृत्ति की (अपनी) प्रजा के बीच में कल्पवृक्षों को लेकर आपस में होने वाले झगड़े को समाप्त कर

कलुषांधर् सुरतरु सं-
कुलमॆम्मवु तम्मवॆंदु तम्मॊळगार्यर्
तलॆयॊत्तिकुट्टि पॊय्वव-
रलवरिकॆयॊळाद तोटियं तॊळगिसिदं ॥ ७५ ॥

आर्तनिं बळियमेळनॆय कुलधरं विमलवाहननॆंबं—
अडिदळिगॆ धरावलयं
कडुवॆंट्टित्तागॆ नडॆयलरियदॆ मनुजर्-
सॆडॆयॆ हयादिगळिंदं
नडॆयिसिदं कलिसि वाहनारोहणमं ॥ ७६ ॥

आर्तनिं बळियमॆंटनॆय कुलधरं चक्षुष्मनॆंबनंदिन मिथुनंगळ्
सुतमुख विलोकनदिनति कुतूहलमनप्पुकॆय्वुदुं—
युगळंगळ्पुट्टॆ सींतागुळिसि पितृयुगं सत्तु सग्गंगळॊळ् पु-
ट्टुगुमिल्लि मुन्नमित्तल् कतिपय दिनदिं मक्कळं नोडि सावॆ-
य्दुगुमीगळ् कर्मभूमि स्थित मॊगसिदुदिं बालकालोकदिंदु-
ब्बॆगमिल्लॆंदितु कालस्थितियनवर्गति व्यक्तमप्पंतु पेळ्दं ॥ ७७ ॥

आर्तनिं बळियमॊंबत्तनॆय कुलधरं यशस्वियॆंबं—
अवरिवरॆन्नदॆ मुन्ना-
र्यवॆसर् पॆसरागॆ बेरॆवेरंदिन मा-
नवर्गॆ पॆसरिट्टु नाम
व्यवस्थॆयं पडॆदु मनुगळॊळ् पॆसर्वडॆदं ॥ ७८ ॥

दिया। ७५ सातवें कुलधर का नाम विमलवाहन था। उसने कठोर भूमि पर पग रखकर चलने से डरने वाले प्रजाजनों को घोड़ों पर चढ़कर प्रयाण करने की कला सिखाई। ७६ आठवें कुलधर का नाम था चक्षुष्म। अपने शासन काल में दम्पतियों को अपनी संतान के प्रति कुतूहली बनते देखकर उसने—"बच्चों के जन्म लेने पर शुरू शुरू में माता पिताओं के आलस्य के कारण उनके स्वर्ग में जन्म लेने वाली कर्मभूमिस्थिति उत्पन्न होती है। बाद में इस तरह की मनोव्यथा की गुंजाइश नहीं रहती," यह कहकर कालस्थिति बताई। ७७ नवम मनु हुआ यशस्वी।—वह अपने समकालीन लोगों में किसी तरह का भेदभाव न दिखाकर योग्य नाम देकर, नाम व्यवस्था करके, कुलधरों में प्रसिद्ध हुआ। ७८ दसवें कुलधर का नाम था अभिनवचंद्र।—उसने आकाश में चमकने वाले चाँद

आतनिं बळियं पत्तनेय कुलधरनभिचंद्रनेंबना कालदोळ्—
उडुपतियुमनुडु गणमुम
नेडेयुडुगदे तोरि तोरि किरुगूसुगळ
नुडिगलिसिदं तोदल्नुडि
पडेविनेगं पितृयुगक्के कर्णामृतमं ॥ ७९ ॥

आतनिं बळियं पन्नोंदनेय कुलधरं चंद्राभनेंबं—
इननं शीतांशुवं मंजिन मुगिल पोर्डपि जनं काणदाकं
पनमं कैकोळ्वुदुं बेळ्ळने बेळगलोडं तोरुगुंकर्मभू व-
र्तनमत्यासन्नमेंदा स्थितियनरूपि संतैसि संताप बिच्छे-
दनमं तंदं यशचंद्रिकेगे नेरेयदेंबन्नमाशांतराळं ॥ ८० ॥

आतनिं बळियं पन्नेरडनेय कुलधरं मरुद्देवनेंबं—
सरि सुरिये मिंचु मिल्लिसे
सुरचापं नेगेये बेडगुगोंडवरं सं-
वरिसि घनाघन समय
स्वरूपमं तिळिपि कळेदनवरूम्मळमं ॥ ८१ ॥

आतनिं बळियं पदिमूरनेय कुलधरं प्रसेनजित्तेंबना कालदोळ् दरियुमळ्दरियुं कुरियुं कुत्तुरुं बेट्टमुं घट्टमुमुपनदियुमुपसमुद्रमुं पुट्टि सलिलसंघातदिनपमृत्यु पुट्टे मानसरसह्य शोकानल दंदह्यमान मानसरागे—

और तारों को बच्चों को निरंतर दिखाकर, (उन्हें) तोतली बोली सिखाते हुए मानों माता-पिताओं को कर्णामृत प्रदान किया। ७९ चंद्राभ ग्यारहवाँ कुलधर हुआ।—बादल और कोहरे से घिर जाने के कारण सूर्यचंद्र दिखाई न पड़े तो लोग भयभीत हुए। और जब वे (बादल और कोहरा) हट गये तो लोगों को आश्चर्य हुआ। चंद्राभ ने यह कहकर उनके संताप को दूर किया कि "अब कर्म भूमिस्थिति आ गई है"। ८० बारहवें कुलधर का नाम मरुद्देव था। वर्षा होने पर, बिजली चमकने पर, (आकाश में) कामधनुष (इन्द्रधनुष) दिखाई देने पर आश्चर्य-चकित होने वाले लोगों को वर्षा ऋतु का स्वरूप तथा लक्षण बताकर उनके दुःख का निवारण किया। ८१ तेरहवाँ मनु था प्रसेनजित्त। वर्षाऋतु में छोटे-बड़े प्रवाहों से, गड्ढे, नाले, टीले, घाट, उपनदी, उप-समुद्रों की जलराशि से होने वाली अपमृत्यु की असह्य शोक-ज्वाला से पीड़ित लोगों को—प्रसेनजित्त ने समझाया कि जिस तरह तेल के समाप्त

तवे तैलं दीपं नं- ※ दुवंते गळियिसे निषेकमरिवर् मुन्नं
पवन प्रहाररिंद तै- ※ लवुळ्ळोडं नंदुवंते पोंदुवरीगळ् ।। ८२ ।।

बडिकोळे कायुं पण्णुं
तोंडंबे परिदुदिर्व माळ्कॆयिं किरिविरियर्
मडिवरनुक्रमदिं सा-
वोंडरिसदोंडरिसुवुदल्ते कदळीघातं ।। ८३ ।।

उदयिसि नडुवगलप्पुदु
मुदितोदितनागि सूर्यनस्तमिसुववोल्
उदयिसि जौवनमं तळे-
दोदविद मुप्पिनोळे कळिवरिल्लि बळियं ।। ८४ ।।

एंदु कालस्वरूप निरूपणगॆय्दवर शोक प्रत्यनीकमनदर्पिदं
ई पेळ्द कुलधर संकुलक्कॆ—

ओंदु पळितद दशांशदो- ※ ळोंदंशं मोदल मनुगॆ पदिमूवरोळं
पिंदणवर्गळ दशांशदो- ※ ळोंदंशं मुंदणवर्गॆ परमायुष्यं ।। ८५ ।।

सासिरमॆंटुनूरु श- ※ रासनमोर्वंगॆ पंचशत हीनं बा-
णासनमिवर्गुळिद- ※ गॆसरिकुं क्रमदिनुद्दमिर्पत्तैविल् ।। ८६ ।।

हो जाने पर दीप बुझ जाता है उसी तरह (आयु समाप्त होने पर) लोग मरते हैं, यह स्वाभाविक है। लेकिन जिस तरह तेल भरा रहने पर भी, तूफान आ जाने पर, दिया बुझ जाता है। उसी तरह आकाश में भी लोगों का मरना आश्चर्यजनक नहीं है। ८२ कच्चे-पक्के फलों से लदे पेड़ की शाखाओं पर डंडों से मारे तो पहले पके फल और बाद में कच्चे फल गिरते हैं। उसी अनुक्रम से लोग मरते हैं। देखो कदली-वृक्ष फलों की गोद देकर ही मरता (सूख जाता) है। ८३ पहले सूर्योदय होता है, बाद में मध्याह्न। अंततः संतोषचित्त हो जिस प्रकार सूर्य अस्त होता है इसी तरह भविष्य में जन्म लेकर, बाल्य, यौवन बिताकर बुढ़ापे में लोग मरेंगे। ८४ इस तरह कालस्वरूप को सविस्तार समझा कर उसने लोगों के शोकरूपी शत्रु का निवारण किया। प्रथम मनु की आयु 'पळित' के १/१० अंश 'प्रमाण' रही; तत्पश्चात् के मनुओं का आयु-प्रमाण क्रमशः प्रथम कुलधर की आयु का १/१० अंश जितना घटता जाता है। ८५ प्रथम कुलधर का देहप्रमाण है एक हजार आठ सौ धनुष लंबा। द्वितीय मनु का देहप्रमाण प्रथम मनु से पाँच सौ धनुष कम। तृतीय कुलधर का देहप्रमाण आठ सौ धनुष। तत्पश्चात् के कुलधरों

मनु चंद्राभं पांडुर ❋ तनुवे यशस्वि प्रसेनजिच्चक्षुष्मर्
वनज दळच्छविगळ् कां-❋ चन रोचिष्णुगळे मिक्क कुलधररेल्लं ॥८७॥

मंतणमेनादिय म- ❋ न्वंतरदोळशीतिभागि पल्यदोळाम-
न्वंतर दशमांशं म- ❋ न्वंतरमक्कुं प्रसेनजित्पर्यंरं ॥ ८८ ॥

क्रमदय्वरिंदे हा दं- ❋ डमय्वरुं मनुगळिंदे हामादंडं
समनिसे हामा धिग्भं- ❋ डमय्वरिंदाय्तु भरतनिं तनुदंडं ॥ ८९ ॥

तदनंतरं पदिनाल्कनेम कुलधरं नाभिराजनेंबं पंचविंशत्युत्तर पंचशत शरासनोत्सेधनुं पूर्वकोटि परमायुष्यनुमेनिसि—

मुन्निन जन्मद सुकृतमे
सन्निदमाय्तेने मति श्रुतावधिबोधं
तन्नोडने पुट्टे पुट्टिद-
नेन्नाभि यशस्सनाभियो कुलधररोळ् ॥ ९० ॥

ओरोंदं कुडुगुं दशांग सुरभूजं बेळ्पुदं भूतल- ।
क्कारेनं पडेदंतु जीविसुवरेंबी कर्मभू वर्तन ॥
प्रारंभोचित जीवनोपकरणोपायंगळं तोरि को-
ट्टारातीय मनुप्रधानरनुदात्तं नाभि कीळ्माडिदं ॥ ९१ ॥

का देहप्रमाण क्रमशः पचीस धनुष घटता जाता है और चौदहवें मनु का देहप्रमाण पाँच सौ पचीस धनुष रह जाता है। ८६ चंद्राभ कुलधर पांडर वर्ण का है। यशस्वी, प्रसेनजित्त और चक्षुष्म का वर्ण कमलदल के समान था। अन्य कुलधर काँचन रंग के थे। ८७ प्रथम मन्वंतर की अवधि है एक 'पळित' का १/९ वां अंश। तत्पश्चात् प्रसेनजित्त मनु तक के मन्वंतर की अवधि क्रमशः प्रथम मन्वंतर के १/१० अंश जितनी घटती है। ८८ क्रमशः पांच राजाओं से हादंड व्यवस्था, पांच मनुओं से हामादंड व्यवस्था, शेष पांचों से हामाधिदंड व्यवस्था और भरत से तनुदंड व्यवस्था शुरू हुई। ८९ उसके बाद चौदहवें कुलधर नाभिराज का जन्म हुआ। उसका देहप्रमाण था पाँच सौ पचीस धनुष। वह पूर्व ❋ करोड़ परमायुष्यमान था।—मानो पूर्व जन्म का पुण्य ही उदित हुआ हो, इस प्रकार अवधिज्ञानी के रूप में जन्मा नाभिराज कुलधरों में प्रसिद्ध हुआ। ९० नाभिराज ने यह समझकर कि कल्पवृक्ष से मिलने वाले अल्प

❋ पूर्व = जैन मतानुसार एक कालविशेष जो सात नील, पाँच खरब, साठ अरब वर्ष का होता है।

मॊदलिगनवनीश्वररॊळ् * पदिनाल्कनॆयं मनुप्रधानरॊळॆंबो- ।।
ळ्पुदितोदितमॆनॆ महिमा-* स्पदनादं नाभिनाभिखंडन कुशलं ।। ९२ ।।

भुवन जन जीवनोपा- * य वृत्तियं तोरिकोट्टु कृत कृषिकर्म ।।
व्यवहृतियिं कृतयुगमॆं- *ब विकल्पमनादिकालदॊळ् पुट्टिसिदं ।।९३।।

पिंडि पिळिदिक्षुरसमं * कॊंडुपयोगिसुवुपायमं तोर्पुदुमा ।।
दंडधर वंशमवनी * मंडममीक्ष्वाकुवंशमॆनिसित्तिळॆयॊळ् ।।९४।।

नयनं नीलसरोजमं सॆणसुगुं वृक्षःस्थळं वज्रवे-
दिय नाळ्पिसुगुं मुखं कमलमं कीळ्माडुगुं कैगळा-
नॆय कैयं नरवमिदुवं नगुगुमूनम्माडुगुं जानु बा-
ळॆयं कंभंगळनॆंदॊडॆवॊगळ्वेनो भानाभियं नाभियं ।। ९५ ।।

मरुदेवियॆ तक्कळ् ना-
भिराजल्लभॆ यॆनल्कॆ वल्लभनॆनिसल्
मरुदेविगॆ तक्कं ना-
भिराजननुरूपरिन्नरार् दंपतिगळ् ।। ९६ ।।

आहार भूतल के लोगों की माँग को पूरा करने में असमर्थ हैं, कर्मभूमि के लोगों को जीवनोपार्जन के विभिन्न उपाय बताकर अब तक के समस्त कुलधरों में सर्वश्रेष्ठ कहलाया। ९१ राजाओं में सर्वप्रथम और मनु-प्रधानों में चौदवें माने जाने वाले नाभिराज ने, जन्म लेने वाले बच्चों की लंबी नाभि को काटने का उपक्रम प्रारंभ करवाया और महिमावान कहलाया। ९२ संसार के लोगों के जीवनोपाय-निमित्त कृषि संबंधी जानकारी देकर, अपने जीवन काल को कृतयुग नाम देकर उसे अन्वर्य (सार्थक) बना दिया। ९३ ईख को निचोड़ कर (पेर कर) रस निकाल कर उपयोग करने का तरीका लोगों को बनाने के कारण उस वंश का नाम इक्ष्वाकुवंश पड़ा। यम ही इस (वंश) का मूल पुरुष था। ९४ जिसकी आँखें नीलकमल से होड़ ले रही थीं, छाती वज्रवेदी से टकरा रही थी, मुख कमल को भी नीचा दिखा रहा था, हाथ हाथी की सूँड को लजा देते थे, नख की तुलना में चाँद भी फीका प्रतीत होता था, जाँघें कदलीदंड को लज्जित कर देती थीं, ऐसे नाभिराज के स्वरूप-सौन्दर्य का वर्णन कैसे किया जा सकता है? ९५ मरुदेवी ही नाभिराज की पत्नी बनने योग्य थी। उसके पति बनने की योग्यता नाभिराज में थी। फिर उन जैसे रूपवान दम्पति और कौन होंगे? ९६ देवताओं की स्त्रियाँ ही (मरुदेवी की) परिचारिकाएँ थीं, नतमस्तक हो देवेंद्र ही पूजा करता था।

दूवैंले दुइ भागदेखि झिकि भाग् तिनको पुऱ्याई दिया ।
तीन् रानी मिलि तेहि पायस तहाँ संपूर्ण खाई लिया ॥५५॥
तीनै रानि ति गर्भिणी पनि भया तेज् देवताको सरी ।
देखी यो सब रानिका सकल लोक् खूशी भया तेस् घरी ॥
कौशल्या जननी गराइ भगवान् श्रीराम पैदा भया ।
देखिन् श्रीप्रभुको चतुर्भुज स्वरूप् सब् माइका ताप् गया॥५६॥
हात् जोरी बहुतै स्तुती पनि गरिन् ईश्वर् इनै हुन् भनी ।
जान्याँ नाथ ! हजूरलाइ सबका आत्मा स्वरूपी भनी ॥
यो ब्रह्माण्ड पनी सहज् उदरमा लिन्या त आफै थियौ ।
मेरा आज उदर्विषे बसि यहाँ यो जन्म ऐले लियौ॥५७॥
देख्याँ भक्त-उपर् दया हजुरको हे नाथ् ! शरण्मा पऱ्याँ ।
यै मूर्ती प्रभुको सदा मनमहाँ झल्कोस् पुकारा गऱ्याँ ॥
यस्तो दिव्य शरीर् लुकाइकन बेस् बालक् स्वरूप्का बनी ।
दर्शन् देउ मलाइ हेर्छु भगवान् ! फेर् बाललीला पनि॥५८॥
तेही बालक मूर्तिलाइ म यहाँ आलिङ्गनादी गरी ।
सब् पाप् नष्ट गराउँला र करुणा होला र जाँला तरी ॥

(खीर) खाने ही वाली थीं कि सुमित्रा भी उसी समय वहाँ आ पहुँची और कहा कि मेरा भाग कहाँ है । दोनों ने अपने-अपने हिस्से में से निकाल कर उसके लिए भाग पूरा किया । तीनों रानियों ने मिलकर सब खीर खाई । ५५ तीनों रानियाँ गर्भवती भी हो गईं । उनके मुखमण्डल दिव्य तेज से पूर्ण थे । ऐसा देखकर सारा ब्रह्माण्ड हर्षोल्लास से भर गया । कौशल्या ने भगवान् श्रीराम को जन्म दिया । भगवान् का चतुर्भुज स्वरूप देखकर माता का ताप समाप्त हो गया । ५६ राम ईश्वर हैं, ऐसा समझकर हाथ जोड़कर [कौशल्या ने] उनकी स्तुति भी की—नाथ मैं आपको पहचान गई । आप सबके आत्मास्वरूप हैं । इस ब्रह्माण्ड को भी सहज ही पेट में धारण करने वाले आप ही थे । आज मेरे गर्भ में स्थित होकर यहाँ जन्म लिया है । ५७ हे नाथ ! आपकी ऐसी महान् कृपा देखकर आपके चरणों में पड़ती हूँ । मेरे हृदय की यही पुकार है कि आपकी यह मूर्ति सदैव मेरे हृदय-पटल पर विराजमान रहे । इस दिव्य रूप को अदृश्य कर सुन्दर बाल-स्वरूप में मुझे दर्शन दीजिए । तब मैं बाल-लीला देखकर आनन्द प्राप्त करूँगी । ५८ आपके उसी बाल-रूप की मूर्ति को मैं आलिंगन करके सब पापों से मोक्ष पाऊँगी । यही

यो बिन्ती महतारिको सुनि हुकूम् यो भो प्रभूको तहाँ।
मातर् ! जुन् छ हजूरको हित कुरो होओस् सबै थोक् यहाँ॥५९॥
दूवै स्त्री पुरुषै भई अघि ठुलो मेरो तपस्या गऱ्यौ।
तीमीलाइ म पुत्र पाउँ भनि खुप् इच्छा यसैमा धऱ्यौ॥
हूँला पुत्र भनेर वर् पनि दियाँ सोही कुराले यहाँ।
तिम्रो पुत्र भयेर जन्मन गयाँ व्यर्थैं म गर्थ्याँ कहाँ॥६०॥
कौशल्यासित बात् पनी यति गरी बालक् सरीका बनी।
चेष्टा बालककैं लिया प्रभुजिले खुप् रून लाग्या पनि॥
थाहा भो दशरथ्जिलाइ र गया दर्शन् गऱ्याथ्या जसै।
देख्तैमा परिपूर्ण मन् हुन गयो आनन्द पाया तसै॥६१॥
तत्क्षण्मा तहिं जातकर्म पनि भो सब् काम् गुरूले गऱ्या।
कैकेयीतिर ता भरत् हुन गया आनन्दमा सब् पऱ्या॥
जम्ल्याहा दुइ पुत्र पाउँदि भइन् ताहाँ सुमित्रा पनि।
जेठा लक्ष्मण ता भया ति दुइमा शत्रुघ्न कान्छा बनी॥६२॥
तीन् रानीतिर चार पुत्र सुकुमार् जन्मी सक्याथ्या जसै।
भूमि रत्न सुवर्ण वस्त्रहरुका भारी भया दान् तसै॥

आपकी मेरे ऊपर महान् कृपा होगी। माता की यह विनती सुन कर वरदान-स्वरूप भगवान् ने कहा, हे माता ! आपके हितार्थ सभी कुछ आपकी इच्छानुसार हो जाये। ५९ किसी समय आप दोनों स्त्री-पुरुष ने इस आकांक्षा से महान् तप किया था कि मुझे आप पुत्र-रूप में प्राप्त करें। उस समय मैंने आपको वरदान देकर आपका पुत्र होना स्वीकार भी किया था। इसीलिए मैं आपका पुत्र बनकर आया हूँ। व्यर्थ ही मैं ऐसा कहाँ करता ! ६० माता कौशल्या से इतनी बातें करके प्रभु ने बाल-रूप धारण किया और बालक की भाँति रोने लगे। और बाल-क्रीड़ाओं से माता को प्रमुदित करने लगे। राजा दशरथ को मालूम होते ही वे दर्शनों के लिए आये। देखते ही उनका हृदय आनन्द से विभोर हो गया। उन्हें एक तृप्ति की अनुभूति हुई। ६१ गुरु ने उसी समय जाति-कर्म आदि सब सम्पन्न करवाये। [राजा-प्रजा] सभी आनन्दित हुए। कैकेयी से भी भरत तथा सुमित्रा से जुड़वे पुत्र ज्येष्ठ लक्ष्मण और कनिष्ठ शत्रुघ्न ने जन्म लिया। ६२ जैसे ही तीनों रानियों के चार सुकुमार पुत्र उत्पन्न हुए वैसे ही [महाराज दशरथ की ओर से] भूमि, रत्नादि, स्वर्ण तथा वस्त्रों का दान किया जाने लगा। गुरु वशिष्ठ ने कौशल्या से

कौशल्यासुतको वशिष्ठ गुरुले नाम् 'राम' भन्नू भनी ।
राख्या कैकयिपुत्रको 'भरत' नाम् जम्ल्याहकोनाम् पनि ॥६३॥
जेठाको शुभ नाम 'लक्ष्मण' गरी जुन् चाहिं कान्छा थिया ।
तिन्को नाम् पनि काम-माफिक असल् 'शत्रुघ्न' राखी दिया ॥
लक्ष्मण् राम्सित खेल्दछन् भरतथ्यैं शत्रुघ्न खेल्दा भया ।
पायस्कै अनुसारले हुन गयो प्रीती त बढ्दैगया ॥६४॥

बालक् काल् बितिगैगयो प्रभुजिको सब् बाललीला गरी ।
चारैको व्रतबन्ध भो पढिसक्या सब् शास्त्र खुब् बोध् गरी ॥
खेल्या क्यै दिनमा शिकार बनमा सच्चा शिकारी बनी ।
राज्काज्गर्नुजती थियो सकल त्यो राज्काज् चलाया पनि ॥६५॥

राम् हुन् परात्मा ति कहाँ विकारी ।
यस् लोकमा छन् नररूपधारी ॥
काम् गर्न लाग्या ति नरैसरीका ।
लीला अपार् छन् भगवान् हरीका ॥ ६६ ॥

राम् नारायण हुन् भनेर मनले जान्या र भेट्छू भनी ।
विश्वामित्र ऋषी बहुत् खुशि हुँदै आया अयोध्या पनि ॥
देख्या श्री दशरथ्जिले र बहुतै आदर् ऋषीको गरी ।
सोध्या काम् किन आज आउनु भयो भन्दै बहुत् प्रेम् धरी ॥६७॥

उत्पन्न बालक का नाम राम और कैकेयी से उत्पन्न बालक का नाम भरत रक्खा। ६३ जुड़वे बालकों में से ज्येष्ठ पुत्र का नाम लक्ष्मण तथा कनिष्ठ का नाम उसके कार्यों के अनुसार शत्रुघ्न [अर्थात् शत्रु का नाश करने वाले] रक्खा गया। लक्ष्मण राम के साथ तो शत्रुघ्न भरत के साथ खेलते हैं। यह सारा विधान खीर के अनुसार ही हुआ। ६४ प्रभु का बाल्यकाल बाल-लीलाओं में व्यतीत हुआ। चारों भाइयों का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। उन्होंने सभी शास्त्रों का अध्ययन समाप्त किया। एक कुशल आखेटक के रूप में कितने ही दिन वन में शिकार खेलते फिरे। राज-काज में भी प्रवीण हुए। ६५ राम परमात्मा हैं। वे तो निर्विकार हैं, उनमें, विकार कहाँ ? इस संसार में उन्होंने मानव-रूप धारण किया है। वे मनुष्य की ही तरह कार्य करने लगे। भगवान् हरि की लीला अपरम्पार है। ६६ ऋषि विश्वामित्र ने हृदय से यह अनुभव किया कि राम नारायण विष्णु हैं। वे बहुत हर्षित

आदर्‌पूर्वकका सुन्या प्रिय वचन् यस्ता ऋषीले जसै ।
आफ्नू दर्द जउन् थियो मनमहाँ सोही बताया तसै ॥
हे राजन् ! सब पर्व पर्वहरुमा ईश्वर्‌विषे मन् धरी ।
गर्छू होम्‌हरु कर्म तेस् बखतमा आयेर होम् नाश् गरी॥६८॥

मारिच्‌ले र सुबाहुले बहुत दिक् गर्छन् र पापी भनी ।
दूवैलाइ मराउनाकन उठ्‌यो रिस् आज मेरो पनि ॥
सोही बिन्ति गरूँ भनेर अहिले आयाँ हजुर्‌मा यहाँ ।
जेठा पुत्र मलाइ बक्सनु हवस् लैजान्छु ऐले वहाँ॥६९॥

लक्ष्मण् साथ् गरि रामलाइ अधिराज् ऐले हजुर्‌ले दिया ।
मारिच्‌लाइ सुबाहुलाइ सहजै मार्न्या यिनैले थिया ॥
यस्मा अर्ति वशिष्ठको लिनुहवस् दीना नदीना महाँ ।
भन्छन् दीनु त बक्सनू पनि हवस् यै काम आयाँ यहाँ॥७०॥

विश्वामित्रजी को सुन्या वचन यो राजा सकस्मा पऱ्या ।
दिऊँ कि नदिऊँ यही मनमहाँ चिन्ता बहूतै गऱ्या ॥
सोध्या ताहिं वशिष्ठथ्यैं पनि गुरो यस्तो पऱ्यो क्या गरुँ ।
कल्याण् हुन्छ कसो गरेर अहिले अर्ती मिलोस् एक् बरु॥७१॥

हुए और दर्शनार्थ अयोध्या आये । दशरथ जी ने ऋषि को देखकर उनका भव्य स्वागत किया और अत्यन्त प्रेम-पूर्वक आने का कारण पूछा । ६७ ऋषि ने दशरथ के प्रिय वचनों को सुनकर अपने मन की सारी व्यथा कह सुनाई । हे राजन् । सभी पर्वों में ईश्वर के प्रति मन लगाकर जब हवन कर्मों को करता हूँ, तो राक्षसगण हवन-कार्य में बाधा डालते हैं । ६८ मारीच और सुबाहु अत्यधिक कष्ट दे रहे हैं । आज मेरे मन में भी इतना क्रोध उठा है कि मैं उन दोनों को मरवा डालूँ । अतः मैं आपसे यही विनती करने आया हूँ कि इस कार्य के लिए मुझे अपना ज्येष्ठ पुत्र देने की कृपा करें; मैं उन्हें अभी वहाँ ले जाऊँगा । ६९ महाराज ! यदि आप लक्ष्मण सहित राम को देते तो मारीच तथा सुबाहु को सरलता पूर्वक मार डालते । देने न देने के विषय में आप गुरु वशिष्ठ से परामर्श कर लेने की कृपा करें । इसी काम से मैं यहाँ आया हूँ । ७० विश्वामित्र के वचन सुनकर महाराज संकट में पड़ गये । दें या न दें ? यही चिन्ता उनके मन में उठने लगी । उन्होंने वशिष्ठ से पूछा, गुरुदेव ! ऐसी समस्या आ पड़ी है, क्या करूँ । किस प्रकार कल्याण होगा यही बताने की कृपा करें । ७१ एक तो यही कठिन है कि राम को देखे बिना मैं

रामलाई म नदेखि बाँच्छु कसरी एक् यै कठिन् भो अनि ।
इन्लाई नदिया सराप् पनि दिनन् की लाग्छ यस्तो पनि ।।
यस्मा श्रेय यसो छ यो गर भनी पाऊँछु आज्ञा जसो ।
सोही काम म गर्दछू हित हुन्या कुन् पाठ् छ गर्नू कसो।।७२।।

यो बिन्ती दशरथ्जिको जब सुन्या ताहीं गुरूले पनि ।
रामको गुह्य कुरा सबै भनि दिया यस्ता इ राम् हुन् भनी ।।
हे राजन् ! तिमि रामलाइ अहिले हुन् पुत्र मेरा भनी ।
भन्छौ पुत्र ति हुन् तथापि इ त हुन् चौधै भुवन्का धनी।।७३।।

भूभार् हर्न निमित्त आज भगवान् यस् पृथ्वितलमा झर्‍या ।
कौशल्यातिर जन्मनू पनि थियो सो सत्य ऐले गर्‍या ।।
कौशल्या दशरथ् दुवै तिमिहरू कश्यप् अदीती थियौ ।
ईश्वर्लाइ म पुत्र पाउँ भनि तप् गर्दै समाधी लियौ।।७४।।

खूशी भै वरदान् दिया प्रभुजिले छोरो म हूँला भनी ।
सोही सत्य गराउनाकन यहाँ जन्म्या परात्मा पनि ।।
शेष्हुन् 'लक्ष्मण' शङ्खहुन् 'भरतजी' 'शत्रुघ्न' चक्रावतार् ।
हुन् को जान्दछ तत्त्व यो बुझ तिमी लीला प्रभूको अपार्।।७५।।

किस प्रकार जीवित रह सकूँगा। यदि मैं इन्हें न दूँ तो ऐसा लगता है कि कहीं विश्वामित्र श्राप न दे दें। इसमें कौन कार्य कल्याणकारी होगा, आप आज्ञा दें; वही हितकर कार्य मैं करूँ। कौन सा आदेश किस प्रकार पूर्ण करना है मुझे आज्ञा दें। ७२ गुरु ने राजा दशरथ की विनती सुनकर उन्हें राम के समस्त गुणों से परिचत कराया। उन्होंने कहा, हे राजन्! आप तो राम को अपना पुत्र कहते हैं। सो तो है ही, तथापि ये वही चौदह भुवन के मालिक हैं। ७३ पृथ्वी के भार को हरण करने आज भगवान् धरती पर पधारे हैं। कौशल्या माता की गोद में जन्म लेना था सो भी अब सत्य हुआ। कौशल्या और दशरथ आप दोनों पूर्व जन्म में अदिति और कश्यप थे। तपस्या में रत होकर भगवान् को अपने पुत्र के रूप में पाने की कामना की थी। ७४ प्रभु ने तपस्या से मुग्ध होकर आपका पुत्र होने का वरदान दिया। उसी को सत्य प्रमाणित करने के लिए प्रभु ने यहाँ जन्म लिया। शेष का (शेषनाग) लक्ष्मण, शंख का भरत, चक्र का शत्रुघ्न अवतार हैं। इन तत्वों को कौन जानता है। अतः आप प्रभु की इस अपार लीला को समझें। ७५ स्वयं प्रभु की मूल शक्ति, अनन्त गुणों से पूर्ण दिव्य मूर्ति बनकर जनक जी की पुत्री

मूल् शक्ति प्रभुको अनन्त गुणकी सो दिव्य मूर्ती बनी।
छोरी भै ति बस्याकि छन् जनककी सीता छ नाऊँ पनि॥
सीता राम् दुइको विवाह विधिले संयोग् गराऊँ भनी।
विश्वामित्रजिको भयो र मनमा आई रह्या छन् पनि॥७६॥
दीन्यै योग्य म मान्दछू भनि गुरू- ले अर्ति दीया जसै।
खूशी भै दशरथ्जिले पनि दिया लक्ष्मण् सहित् राम् तसै॥
राम् लक्ष्मण्कन पाउँदा ऋषि पनी अत्यन्त खूशी भया।
आशीर्वाद् दशरथ् जिलाइ दिइ राम् लक्ष्मण् लिई ती गया॥७७॥
केही दूर् गइ रामलाइ ऋषिले विद्या सिकाई दिया।
जुन् विद्या पढि भोक्थकाइ कहिल्यै लाग्दैन यस्ता थिया॥
गङ्गाका तिरमा बडो बन थियो पुग्या जसै ती तहाँ।
विश्वामित्रजिले कह्या प्रभुजिथ्यैँ राम्! ताड़का छे यहाँ॥७८॥
त्यो हो राक्षसि कामरूपि छ बहुत् लोक्लाइ बाधा पनि।
गर्छे यस्कन मारिबक्सनु हवस् यो पापिनी हो भनी॥
विश्वामित्रजिको वचन्कन सुनी श्रीरामजीले पनि।
टंकार् खुप् धनुको गऱ्या सुनि यहाँ त्योजल्दिआवस्भनी॥७९॥
त्यो टंकार् सुनि ताड़का पनि तहाँ दौड़ेर आई जसैं।
हान्या बाण् प्रभुले गड़्चो हृदयमा त्यो बाण्, मरी त्यो तसैं॥

होकर बैठी है और नाम भी सीता है। सीता और राम दोनों का विवाह का विधिवत संयोग उत्पन्न कराने की इच्छा विश्वामित्र जी के मन में हुई है, इसी लिए ये आए हुए हैं। ७६ जैसे ही गुरु ने ऐसा परामर्श दिया कि देना ही उचित है, वैसे ही प्रसन्न होकर दशरथ जी ने भी राम को लक्ष्मण सहित दे दिया। राम-लक्ष्मण को पाकर ऋषि भी अत्यन्त हर्षित हुए और दशरथ जी को आशीर्वाद देते हुए राम-लक्ष्मण को लेकर चले गए। ७७ कुछ दूर जाकर गुरु ने राम-लक्ष्मण को ऐसी मंत्र-विद्या की शिक्षा दी जिसे प्राप्तकर क्षुधा तथा श्रम का अनुभव कभी नहीं होता। गंगा के किनारे एक बड़ा जंगल था। वे जैसे ही वहाँ पहुँचे विश्वामित्र जी ने प्रभु राम से कहा कि ताड़का राक्षसी यहीं रहती है। ७८ यह राक्षसी मनमोहिनी है और बहुतों के शुभ कार्यों में विघ्न-बाधा पहुँचाती है। यह पापिन है। अतएव इसे मारने की कृपा करें। विश्वामित्र के वचनों को सुनकर रामचन्द्र जी ने धनुष को जोर से टंकारा, जिसे सुनकर वह शीघ्र ही आ जाय। ७९ धनुष की टंकार को सुनकर

यक्षी थी अघिकी सराप् परि तहाँ तेस्ती भयाकी थिई।
राम्ले मारिदिदा त श्राप् पनि टऱ्यो फेर् यक्षिको रूपलिई।।८०।।

श्रीराम्चन्द्रजिका वरीपरि घुमी प्रेम्ले नमस्कार् गरी।
स्वर्गँमा गइ रामका वचनले बेस् एक् विमान्मा चढी।।
विश्वामित्र ऋषि बहुत् खुशि भया यो कार्य देख्या जसै।
जो सब् शास्त्र-रहस्य हो सब दिया ती रामलाई तसै।।८१।।

कामाश्रम् रमणीय थल् तहिं थियो एक्रात् तहाँ वास् गरी।
फेर् सिद्धाश्रममा गया रघुपती सब्लाइ मङ्गल् गरी।।
तेस् सिद्धाश्रममा अनेक् ऋषिथिया पूजा सबैले गऱ्या।
मारिच् फेक्न सुबाहु मार्नकन राम् ताहाँ अगाड़ी सऱ्या।।८२।।

विश्वामित्रजिलाइ भन्नु पनि भो मारिच् सुबाहू कहाँ।
वस्छन् यज्ञ ठुलो गरी लिनुभया ती आउँथ्या की यहाँ।।
भेटै आज भयेन मार्नु कसरी यो मर्जि सून्या जसै।
विश्वामित्र ऋषी अरू ऋषि लिई होम् गर्न लाग्या तसै।।८३।।

ताड़का ज्योंही वहाँ आयी, प्रभु ने बाण छोड़ा। वह बाण जाकर उसके हृदय में लगा। वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुई। यह राक्षसी पूर्व जन्म में यक्षिणी थी। शाप के कारण वह इस दशा को प्राप्त हुई थी। राम के हाथों मरने से उसे इस भयंकर शाप से भी मुक्ति मिल गई। ८० अपने राक्षसी जीवन से मुक्त होकर ताड़का ने प्रभु की परिक्रमा की और प्रेमपूर्वक प्रणाम किया। प्रभु की आज्ञा से वहाँ एक उत्तम विमान प्रस्तुत हुआ, जिस पर चढ़कर वह स्वर्ग लोक को गई। इस कार्य को देखकर विश्वामित्र उनसे अत्यधिक प्रसन्न हुए और जो भी शास्त्र-ज्ञान का रहस्य था उससे राम को परिचित कराया। ८१ इसके बाद उन्होंने कामाश्रम नामक एक रमणीक स्थान में एक रात विश्राम किया। तत्पश्चात् सबका कल्याण करके रघुनाथ जी सिद्धाश्रम को गए। उस सिद्धाश्रम में अनेक ऋषि थे, उन सब लोगों ने राम का सत्कार किया। फिर मारीच और सुबाहु को मारने के लिए राम अग्रसर हुए। ८२ विश्वामित्र से उन्होंने कहा कि मारीच और सुबाहु कहाँ रहते हैं। उनसे तो भेंट ही नहीं हुई। उन्हें मारा किस प्रकार जाए। उन्हें यहाँ तक बुलाने के लिए एक यज्ञ करना चाहिए। रामचन्द्र की ऐसी बातें सुनकर विश्वामित्र अन्य सभी ऋषियों को साथ लेकर यज्ञ करने लगे। ८३

दिन् मध्यान्ह भयो तसै बखतमा　आया ति राक्षस् पनि ।
मान्र्याकाल्कनचाल्नपाइ　अघिझैं　होम् नाश् गरौंला भनी ॥
काहीं हाड़ खसाउँछन् कहिं रगत्　यस्तै　प्रकार्ले　गरी ।
आया ती जब यज्ञमा प्रभुजिले　हान्या अगाड़ी सरी॥८४॥

मारिच्लाइ त बाणले जलधिका　तिर्मा　पुऱ्याई　दिया ।
अग्नीबाण धरी सुबाहुकन ता　भस्मै　गराई　दिया ॥
तिन्का फौज् पनि ताहिं लक्ष्मणजिले　मारी　सक्याथ्या　जसै ।
खूशी भैकन पुष्पवृष्टि गरियो　सब् देवताले तसै॥८५॥

विश्वामित्र बहुत् प्रसन्न हुनुभै　राम्लाइ काख्मा लिया ।
भोजन् गर्न निमित्त राम्कन तहाँ　मीठा　फलादी　दिया ॥
तीन्दिन् ताहिं मुकाम् गऱ्या प्रभुजिले　वार्ता　कथाको　गरी ।
चौथादिन् ऋषिले गऱ्या विनति एक्　राम्का अगाड़ी सरी॥८६॥

हेराम्! जाउँ जनक्जिका पुरमहाँ　राजा जनक् छन् बड़ा ।
गर्नन् आदर भक्तिले हजुरका　साम्ने हुन्याछन् खड़ा ॥
ताहाँ एक् शिवको धनुष् पनि छ बेस्　देखीयला　त्यो　पनि ।
यो बिन्ती ऋषिको सुनेर रघुनाथ्　खूशी भया बेस् भनी॥८७॥

मध्याह्न का समय हुआ, तत्काल राक्षसगण वहाँ आये । षडयंत्र की चाल को न समझकर सदा की भाँति हवनादि को नष्ट करने के लिए कहीं अस्थियाँ कहीं रक्तादि गिराने लगे । जैसे ही वे यज्ञ में आये और विघ्न-कार्य आरम्भ किया वैसे ही प्रभु ने आगे बढ़कर प्रहार किया । ८४ मारीच को तो बाण द्वारा समुद्र के किनारे पहुँचा दिया और सुबाहु को अग्निबाण से भस्म कर दिया । उनकी समस्त सेना भी लक्ष्मण द्वारा मारी जा चुकी थी । तब हर्षोल्लास से पुलकित होकर देवताओं ने पुष्प-वर्षा की । ८५ विश्वामित्र ने अत्यन्त हर्षित होकर राम को गोद में उठा लिया और भोजन हेतु उन्हें फलादि दिये । कथा-वार्ता करते हुए प्रभु जी वहाँ तीन दिन रहे । चौथे दिन ऋषि ने राम के सम्मुख आकर एक विनती की । ८६ हे राम ! आप जनकपुर चलें, जहाँ एक बड़े प्रतापी राजा जनक जी हैं । वह आपको पाकर आपके सम्मुख उपस्थित होकर आपका बड़ा ही आदर करेंगे और भक्ति-भावना से भर उठेंगे । वहाँ शिवजी का एक उत्तम धनुष भी है, आप उसे भी देख लेंगे । ऋषि की यह विनती सुनकर रघुनाथ जी बड़े ही प्रसन्न हुए । ८७

सथ वौंन्दुह् निशि मवूह् मंशिरावुह्
लोलुच्य पय बो थावुये
सतस पनुनिस प्यठ थ्यर थावुह्
सांतिये गाश आवूये ॥ ४ ॥

हारि त तोतस गेलि ज़न कावुह्
सत गौंर तस ति मेजावुये
ती वौंन तंम्य तति यी मों बोज़ावुह्
सांतिये गाश आवूये ॥ ५ ॥

राज़ु दशरथ बरि ना चावुह्
कौशल्यायि रामुजुव ज़ावूये
असि लोंग तार तमिसुंदि नावुह्
सांतिये गाश आवूये ॥ ६ ॥

सौंन्दुरव तु विगिन्यव बंरिवय चावुह्
वौंन्दुक ग़मगोस‍ु द्रावुये
ज़ग ज़ायि येंमसुय सुय असि ज़ावुह्
सांतिये गाश आवूये ॥ ७ ॥

समसारुह् अवेंज़्रारुह् आदम खावुह्
दानु कोना आर ज़्रेंह् आवूये

तू अपने हृदय से सत्य को न भुला, अपितु उसे प्रेमरस से पल्लवित कर। अपने सत्य पर तू (सदा) स्थिर रह—री सीता! तेरे लिए (नूतन) प्रकाश का उदय हो गया। ४ यद्यपि कौवा मैना और तोते की नक़ल भी उतारे (उन्हें चिढ़ाये), फिर भी उसे सद्‌गुरु (सद्‌गति) की प्राप्ति हो जायेगी—ऐसा सुना जाता है और ऐसा सभी कहते हैं—री सीता! तेरे लिए (नूतन) प्रकाश का उदय हो गया। ५ राजा दशरथ प्रसन्नता में क्यों न झूमे—कौशल्या ने रामचन्द्रजी को जो जन्म दिया है। हम (अयोध्यावासी) भी उसके नाम से तर गये—री सीता! तेरे लिए (नूतन) प्रकाश का उदय हो गया। ६ सुन्दरियाँ व कुमारियाँ ख़ुशी में मस्त हो रही हैं, उनके हृदय का ग़म दूर हो रहा है। जिसने जग को पैदा किया वही हमारे यहाँ पैदा हुआ—री सीता! तेरे लिए (नूतन) प्रकाश का उदय हो गया। ७ रे अविचारी, निर्मम संसार! तुझमें दाने-भर की भी दया क्यों नहीं है। क्यों इस संसार में आने वाला व्यक्ति

क्याज़ि गव योरु बेंयि युस तोरु आवुह
सांतिये गाश आवूये ॥ ८ ॥

रज़व कनि छ्यख आमि पनु दावुह
यिमु ना यारु बलु नावुये
संतोशि वेंज्ञारुह बेंयि सथ बावुह
सांतिये गाश आवूये ॥ ९ ॥

सिरयि रुपु मनि मंज़ सु में वुछावुह
ह्नि ह्नि अन्दर सु ज्ञावूये
प्रकाश पानय कस क्याह बु बावुह
सांतिये गाश आवूये ॥ १० ॥

तिमन मंज़ रामुजुव ज़न सिरियि न्यरमल ।
कंरिन राखेंस तु रहज़न अनिगंटिस तल ॥
संमिथ बायन सूतिन येंलि ओस नेरान ।
त्रिकूटी दीवता आंस्य चरकु फ्यरान ॥
तिमन वुछ्य वुछ्य करनि लोंग राज़ु शांदी ।
बशांदी बूमि प्यठ फेरुवुन मुनांदी ॥
दपन तंम्य सारिनुय रुचु रुचु ख़बर वंन्य ।
गयस यि बोंद दयस सूतिन गोंण्डुन मन ॥

आकर वापिस चला जाता है—री सीता! तेरे लिए (नूतन) प्रकाश का उदय हो गया। ८ रे मनुष्य! तू क्यों अपनी नाव को कच्चे धागों की रस्सी से खे रहा है। इससे तेरी नाव घाट से प्रयाण कैसे कर सकती है? तेरी नाव संतोष, विचार और सद्भावना रूपी रस्सी से ही पार लग सकती है—री सीता! तेरे लिए (नूतन) प्रकाश का उदय हो गया। ९ उस सूर्य-रूपी सौन्दर्य को मैंने अपने मन में देखा। वह मेरे अंग-प्रत्यंग में समा गया। मैं स्वयं उसके प्रकाश में आलोकित हो उठा, अब किसी को क्या दिखाऊँ—री सीता! तेरे लिए (नूतन) प्रकाश का उदय हो गया ॥ १० ॥ उनमें (अन्य भाइयों में) रामचन्द्रजी मानो निर्मल सूर्य के समान थे। अपने प्रकाश से उन्होंने (सकल) राक्षसों व राहज़नों को चौंधिया दिया (उन पर अँधेरा छा गया)। जब वे अपने भाइयों के साथ (विहार करने के लिए) निकलते थे तो त्रिकोटि (३३ कोटि) देवता उनके चारों ओर विचरते रहते। ऐसे पुत्रों को देख-देख राजा शादमानी (हर्षोल्लास) मनाने लगा और उसने भूमि पर मुनादी करायी।

खरुचि बापत कुने कांह आसि मुहताज।
खबर करिनम तु दरमस दिमु पनुन राज ॥ ५ ॥

सुबह फौल सारनिय गव अनिगोट दूर।
मुनादी द्रायि रामुन राज महशूर ॥
यि वंन्य ज़्यख कांन्सि कोंह न्यंदित करन न।
पछ अनि ज़्यख तिम ति अपर्मरित्य ज़ाँह मरन न ॥
शरीरुकि खोतु गंज़रावन परुद्य पान।
बेंयिस लगि खेद पानस प्यठ लदन हान ॥
यिहय छख व्यद परुन्य अव्यदा परनु कुँह।
सतुच द्रय अदु त्वय व्रांविथ मरि नु कुँह ॥
अनाथन हुन्द रछुन मटि राज़ु लूकन।
तिमन आयुत थवन तिम अन तु बेंयि पन ॥ १० ॥

तिथय कोतर सपुन्य पांज़न सुत्यन यार।
फौलन पंपोश ह्यू पांनिस अन्दर नार ॥
गब्यन सुतिन करुक शालव वौफांयी।
गिन्दान तिम पानु वांन्य ज़न ब्राटु बांयी ॥

कहते हैं उसने यह शुभ-समाचार (पुत्र-जन्म का समाचार) सबको कहलवाया तथा भगवान् की महिमा (पर विश्वास कर) अपना मन भगवान् के चरणों में लगा दिया। [राजा ने मुनादी करायी–] ख़र्च (पैसे) के लिए कोई मुहताज (विवश) हो तो मुझे ख़बर दे, मैं अपना राजपाट तक दान-धर्म के लिए दे दूँगा ॥ ५ ॥ अगले दिन जब सवेरा हुआ और अँधेरा दूर हो गया तो पुनः मुनादी की गई कि राम का राज मशहूर हो। (मुनादी करने वाले से कहा गया कि) वह मुनादी करे कि कोई किसी की निंदा न करे, इससे बचने से वे अकाल मृत्यु को प्राप्त न होंगे। अपने शरीर से वे औरों के शरीर को महत्वपूर्ण समझें। दूसरों को दुःख न पहुँचाएँ, अपितु उस दुःख को स्वयं भोगें। इसी विधि का वे (जनता) अनुसरण करें तथा दूसरी तरह की अविद्याओं को न अपनायें। ऐसे (आचरण) करने से सत्य की क़सम वे अपनी स्त्रियों को छोड़कर कभी अकाल मृत्यु को प्राप्त न होंगे। अनाथों की रक्षा करना राजा लोगों का कर्त्तव्य है, उनके जीवन की कुशलता एवं व्यवस्था को बनाये रखना भी उनका कर्त्तव्य है ॥ १० ॥ ऐसे शान्तिमय व सुखद वातावरण में कबूतर बाज़ का यार (मित्र) बन गया, आग भी पानी में कमल के समान खिल उठी, गीदड़

वेंव्रारुच वथ वुछिथ ब्रारेंव सलाह ज़ोन ।
कोरुख हारेंन सुत्यन ब्रारेंव व्यसुतोन ।।
कोंहस प्यठ फेरवुन्य स्यमिन्य सपुन्य गाव ।
दपन तस बीमु सुत्य सुह गासु ह्यथ आव ।।
कुक्यलि पूत्यन सबक यि लंग्य वनुनि नूल ।
तंछिव मो नेरिह असतस खार महसूल ।। १५ ।।

येंत्याद्यक रेंश्य तपीशोंर जूग्य संन्यास ।
सपुन्य खोंशदिल च्रोंलुक मुश्किल तु तलवास ।।
करुन्य यत्रकाल तामथ शादमानी ।
मरुन मोकूफ सापनुन दरजवानी ।
करन केंछाह सु युथ त्युथ सोंख तु आनंद ।।
ज़हर लोंग राखिसन वेंह गव मोंदुर कन्द ।
गरम बाज़ार सापनुन दरम का राज ।।
मनुष्य गंयि खोंश तु काँह छुनु कासि मोंहताज ।
समय त्युथ राजह डीशिथ ज़िन्दु सापनुन ।
मनोशन वासुना फीरुख सतस कुन ।। २० ।।

और बकरियों में मेलजोल बढ़ गया और वे आपस में ऐसे खेलने लगे मानो (एक ही गुरु के) शिष्य आपस में खेल रहे हों। सुविचारों का मार्ग देखकर बिल्लियों ने इसी में ख़ैर जानी कि मैनाओं के साथ मित्रता का सम्बंध स्थापित करें। पर्वत (कोह) पर फिरने वाली सिंहिनी गाय बन गई और कहते हैं उस गाय के लिए भय के कारण स्वयं (जंगल का राजा) सिंह घास लेकर आ गया। कोयल के पूतों (बच्चों) को नेवला समझाने लगा कि चिन्ता मत करो (अब हम तुम्हारा भक्षण नहीं करेंगे) ।। १५ ।। अनेक प्रकार के ऋषि, तपीश्वर, योगी, संन्यासी आदि के दिल ख़ुश हो गये और उनके दिलों का सन्ताप व दुःख दूर हो गया। पर्याप्त समय तक वह (राजा) शादमानी करने (ख़ुशियाँ मनाने) लगा। वह ऐसे कार्य करने लगा जिससे सुख और आनन्द की वृद्धि हो गई। राक्षस ज़हर (के घूँट) पीने लग गये तथा (देवताओं के लिए) हलाहल भी मधुर कन्द बन गया। (चारों ओर) धर्म के राज का बाज़ार गर्म हो गया। सभी मनुष्य ख़ुश हो गये और कोई किसी का मुहताज नहीं रहा। ऐसे समय (वातावरण) को देखकर राजा जीवित (प्रफ़ुल्लित) हो उठे तथा मनुष्यों की वासना (प्रवृत्ति) सत्य की ओर फिर गई ।। २० ।।

व्यॆश्वामॆत्र सुन्दि यॆगॅच रख्या

कोॅरुन यॅज्ञ तप व्यॆश्वामेत्रन पोॅरुन वीद ।
दपान तस राखिसव द्युत वारियाह खीद ॥
दपन यॆलि राखिसव कोॅर यॅज्ञ अवारु ।
गॅछ्यि तॅम्य दशरथस वोॅन वारुह वारुह ॥
छु सथ यि यॆलि तॅमिस निशि वादा पोलुन ।
दयोगथ दशरथस निशि हाल बोवुन ॥
दोॅपुन तस दाॅद्यलदसुन्द वाति बोज़ुन ।
मॆ साॅतिन रामुजुव गछ्यि तूर्य सोज़ुन ॥
छु क्युथ बलुवीर पनुन वीरुथ मॆ हावॆम ।
ब गोलुस राख्यसव तति मोॅकलावॆम ॥ ५ ॥

दिहमनय सुत्य अदु यॆतिय पान ज़ालय ।
तिथय दिमु शाप युथ रुम राठ गालय ॥
मॆ सुत्य दिन रामु जुव दियि राख्यसन मार ।
नतु बद वाख कड़य बूतराॅत्र हॆयि नार ॥
स्यठाह नाखोॅश सपुन राज़स कोॅरुन न्याये ।
विशिष्टन दोॅप गॅछ्यिन कॆंह छुस नु परवाये ॥

विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा

कहते हैं विश्वामित्र जब घोर तप और वेद-पाठ कर रहे थे तो राक्षस उन्हें बहुत खेद (कष्ट) पहुँचाने लगे। राक्षसों द्वारा बहुत सताये जाने पर वह राजा (दशरथ) के पास अपना दुखड़ा कहने के लिए गये। मुनि ने राजा से सहायता देने का वादा (वचन) लिया और अपना हाल दशरथ के सामने रखा—मुनि ने कहा कि हे राजन्! इस दुखियारे का कहा आपको सुनना चाहिए और मेरे साथ रामचन्द्र को भेजना चाहिए। वह बलवीर अपनी वीरता दिखाकर मेरा उन राक्षसों से उद्धार करेगा जिन्होंने मुझे गला (क्षीण कर) दिया है ॥ ५ ॥ यदि आप (रामचन्द्र को) मेरे साथ नहीं भेजेंगे तो मैं यहीं पर आपके सामने आत्मदाह करूँगा, तथा ऐसा शाप दूँगा कि आपका सारा कुल-कुटुम्ब नष्ट हो जायगा। मेरे साथ श्रीरामचन्द्र को भेज दीजिए, वे राक्षसों को मार डालेंगे नहीं तो ऐसे (अपशकुन-भरे) कुवाक्य कहूँगा कि धरा जल जायेगी। (राजा द्वारा कुछ अनिच्छा प्रकट करने पर) वह (विश्वामित्र) राजा से बहुत

यि आमुत यी करुनि अवतार दारिथ ।
गछुन छुस राखिसन प्रेंथ जायि मारिथ ॥
यि केंछा रेश्य दोपुस राज़न ति बूज़ुन ।
पोज़ुय बूज़ुन गोंबुर तस सुत्य सूज़ुन ॥ १० ॥

पकन गव न्यून लखिमन सुत्य पानस ।
गिन्दन खेलन पकन गयि प्रेंथ मकामस ॥
मुदा तम्य कोर नु दशरथ राज़ुह लाचार ।
रेशिस सुतिन पकान गव रामु अवतार ॥
पनुन ओसुस ग़रज़ सापनुन रवानु ।
बबस रोख़सत ह्यनुक ओसुस बहानु ॥
ओनुन म्रत राखिसन प्रेंथ शायि छांरिन ।
लबिन यथ जायि तति बेवायि मारिन ॥
च्यतुन बालक वरनु येलि तीर हारिन्ज ।
पकन गव रथ छकन त्युथ द्यवि मारिन्ज ॥ १५ ॥

सु मारिन्ज दयत दयतन हुन्द कुमेदा ।
त्रलिथ गव ज़िन्दुह ज़ख्मी गोस पनुन पान ॥

नाख़ुश हुए । इस पर वशिष्ठ ने यह कहकर न्याय किया कि हे राजन् ! श्रीरामचन्द्र को जाने दीजिए, उनका कोई अमंगल नहीं होगा, उन्होंने तो यही सब कुछ करने के लिए इस लोक में अवतार धारण किया है, उनको तो हर जगह पर राक्षसों का वध करना है । जो कुछ भी ऋषि (वशिष्ठ) ने कहा उसे राजा ने मान लिया तथा उसे सत्य मानकर अपने पुत्र को मुनि के साथ भेज दिया ॥ १० ॥ जाते समय श्रीराम लक्ष्मण को भी साथ में लेते गये । दोनों (मुनि के साथ) खेलते-घूमते, लीलाएँ रचाते विभिन्न मुक़ामों से गुज़रते चले । कहने का मुद्दआ (प्रयोजन) यह है कि उन्होंने (रामचन्द्रजी ने) भी राजा को लाचार नहीं किया, (उनकी दुविधा दूर की) और (ख़ुशी-ख़ुशी) ऋषि के साथ-साथ चलते गये । ऋषि के साथ रवाना होने में उनका (राम का भी) अपना उद्देश्य था तथा पिता से रुख़सत लेना मात्र एक बहाना था । उन्होंने राक्षसों के लिए मृत्यु-रूप धारणकर स्थान-स्थान पर उन्हें ढूँढा तथा जहाँ कहीं पर वे (राक्षस) मिले उनको बुरी तरह से मार डाला । जब बालक राम ने तरकस से तीर छोड़ा तो ख़ून से लथपथ वह मारीच दैत्य वहाँ से (अपनी जान बचाता हुआ) भाग खड़ा हुआ ॥ १५ ॥ दानव-दैत्यों का सिरमौर (वह मारीच)

तिथुय रथ पोंक कोंलन तूफ़ान सांपनुन ।
तिथुय युथ राखिसन अवमान सांपनुन ।।
वेंश्वामेंत्रस स्यठाह आनन्द सांपनुन ।
मोंदुर गव मोंख तमिस वेंह कन्द सांपनुन ।।
वेश्वामेंत्रस दपन तसुंज़ुय खेंलिश आंस ।
दया करुनस गंछिथ तंम्य तस यलत कांस ।।
बोंविन जय तस रेंशिस छु त्रन तारन ।
वंनिन तस रामु च्रंन्द्रुन्य सांरिय कारन ।। २० ।।
वेंश्वामेंत्रस त्युथुय प्रुछ रामुच्रंन्दुरन ।
गंगा किथु पांठ्य वंछ आकाशि निशि बोंन ।।
तिथय बांगी रथुन्य वोंतपथ तंमिस वंन्य ।
गंगा किथु पांठ्य तंम्य बूतुरांत्र प्यठ अंन्य ।।
गंगा यामथ वंसिथ आकाशि निशि आये ।
महादीवन जटन मन्ज़ तस दित्रुन जाये ।।
त्रंजिस तेंलि व्याद येंलि आज़ाद सांपनुन ।
दोंपुन तस वोंथ गछव वोंन्य परबतस कुन ।।
संमिथ तिम आंस्य त्रनवय द्रायि प्रातस ।
मनस पनुनिस छ शंखा जान पालनस ।। २५ ।।

ज़िन्दा बच कर निकल तो गया किन्तु उसका शरीर (बुरी तरह से) ज़ख़्मी हो गया। उसके शरीर से इतना रक्त बहा कि नदियों में तूफ़ान आ गया और राक्षस मन-ही-मन क्षुब्ध हो उठे। विश्वामित्र यह सब देखकर आनन्दित हो उठे और उनका मुख-मण्डल मधुर (प्रफुल्लित) हो गया तथा मधुमय कन्द बन गया। कहते हैं विश्वामित्र को उस (राम) की ही चाह थी और राम ने दयाकर, उनके यहाँ जाकर उनकी सारी दरिद्रता दूर कर दी। (अन्य ऋषियों के साथ राम को मिलाने पर) सभी ने राम की जय-जयकार की और विश्वामित्र ने सभी से रामचन्द्र की महिमा का बखान किया ।। २० ।। (आगे चलकर) विश्वामित्र से जब रामचन्द्र ने पूछा कि (यह) गंगा कैसे आकाश से नीचे उतरी तो मुनि ने भगीरथ की सारी घटना कह सुनाई, (यह भी बताया) कि गंगा को कैसे आकाश से नीचे उतरने के बाद महादेव ने अपनी जटाओं में स्थान दे दिया और बाद में आज़ाद होकर उसकी मुक्ति कैसे हुई ? (इसके बाद) राम ने कहा, अब उस पर्वत की ओर चलें। वे तीनों मिलकर प्रातःकाल

अहल्यायि हुन्द शापु मूज़न

कौरुक आशच्रर वुछिख येलि जान जाया ।
वननि लंग्य वेशन संज़ वेश्नु माया ॥
पकुनि लोंग रामुजुव येलि लंख्यमनन ड्यूठ ।
गुबार वौथ पादुकमुलन तथ शिलायि ब्यूठ ॥
बुछिव मोंख्ती करुन्य आंस तस पानस ।
नतु क्याह ओस गछुन तथ रेश्य मकानस ॥
तंम्य करय पाप वुछितव किछ लंबुन वथ ।
अहल्यायि पान पुशरोवुन दयस पथ ॥
वननि लोंग र्यौश बक्ती वौन्य यिहंय गये ।
अमी बक्ती सुत्य ईशर पानु वांती ॥ ५ ॥

कंरिव मो पाप मनशव वारु बूज़िव ।
दितुस शाप बरथाहन सथ यि बूज़िव ॥

(उस दिशा की ओर) चल पड़े। सभी के मन में कुछ शुभ होने वाली शंका का उदय हो रहा था ॥ २५ ॥

अहल्या का शाप-मोचन

एक रमणीक-स्थल को देखकर सभी आश्चर्य करने लगे तथा विष्णु (भगवान्) की माया की प्रशंसा करने लगे। जब रामचन्द्र कुछ आगे जा रहे थे तो लक्ष्मण ने देखा—कि (एक स्थान पर) रामचन्द्रजी के पादकमलों का एक शिला से स्पर्श हो जाने पर एक गुबार उठा। (विधि का विधान देखिए) उस शिला को रामचन्द्र के चरण-स्पर्श से मुक्त होना था; अन्यथा वे (रामचन्द्रजी) उस ऋषि के यहाँ क्यों जाते ? उस (अहल्या) ने पाप किया और देखो उसकी क्या दुर्गति हुई (पत्थर बन गई)! अहल्या ने प्रत्यक्ष होकर भगवान् के (चरणों में) अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। तब ऋषि (विश्वामित्र) अहल्या की भक्तिभावना का बखान करने लगे। इसी भक्तिभावना (तप) से वह (अहल्या) ईश्वर के पास पहुँच पाई ॥ ५ ॥ हे मनुष्यों! ज़रा ध्यान से सुनो, तुम भी कभी पाप मत करो। अहल्या (इतनी सुन्दर थी कि उसका मुख-मण्डल) सूर्य के समान चमकता था जिसे देख-देख कितने ही वीरों के प्राण निकल जाया करते थे। देवराज इन्द्र भी काम में अन्धा हो गया और रात के समय ऋषि (गौतम) के मकान की ओर चल पड़ा।

फ़ार्म-४

(नियम ८ देखिए)

१ प्रकाशन स्थान	४०५/१२८ प्रभाकर निलयम् चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३
२ प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
३ मुद्रक का नाम	नन्दकुमार अवस्थी
नागरिकता	भारतीय
पता	४०७/१०९ रानीकटरा, लखनऊ-३
४ प्रकाशक का नाम	नन्दकुमार अवस्थी
नागरिकता	भारतीय
पता	४०७/१०९ रानीकटरा, लखनऊ-३
५ संपादक का नाम	नन्दकुमार अवस्थी
नागरिकता	भारतीय
पता	४०७/१०९ रानीकटरा लखनऊ-३
६ स्वामित्व	भुवन वाणी ट्रस्ट ४०५/१२८, 'प्रभाकर निलयम्' चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

मैं, नन्दकुमार अवस्थी एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

नन्दकुमार अवस्थी

ता० २२-४-७२

प्रकाशक,
मुख्यन्यासी-सभापति,
भुवन वाणी ट्रस्ट

★ पहले मनुष्य मदिरा पीता है,

★ फिर मदिरा मदिरा को पीती है,

★ और अन्त में मदिरा मनुष्य को पी जाती है।

समाज व राष्ट्र की प्रगति के लिए मद्यनिषेध हमारा पावन कर्तव्य हो।

ग २५६८ मद्यनिषेध एवं समाजोत्थान विभाग, उत्तरप्रदेश द्वारा प्रसारित।

वाणी सरोवर

(अपने ढंग का निराला त्रैमासिक पत्र)

इस पत्र में हिन्दी, उर्दू, अ़रबी, फ़ारसी, संस्कृत, पारसी, बंगला, ओड़िया, मराठी, गुरमुखी, तमिळ, मलयाळम, असमी, गुजराती, तेलुगु, कन्नड़, सिन्धी, कश्मीरी और नेपाली के अनुपम ग्रथों का हिन्दी अनुवाद तथा देवनागरी लिपि में मूल पाठ धारावाहिक प्रकाशित हो रहा है। वार्षिक शुल्क १०·०० मात्र। पाली. प्राकृत आदि का धारावाहिक कार्यक्रम भी शीघ्र ही अपनाया जायगा।

नवीन ग्राहक बननेवाले सज्जनों को सन् १९७० तथा १९७१ वर्षों का शुल्क २०·०० और इसी प्रकार वर्ष १९७२ के लिए १०·०० अर्थात् ३०·०० तीन वर्ष के लिए भेजना उनके हित में होगा। बीते हुए वर्षों के अंक न मंगाने पर धारावाहिक चलनेवाले पहले से शुरू अनेक ग्रंथ उनके संग्रहालय में अपूर्ण रह जायँगे।

प्राप्ति स्थान—भुवन वाणी ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ—३

बढ़ती हुयी जनसंख्या तथा उद्योग धंधों की मांग को पूरा करने के लिए

अधिक से अधिक वृक्ष लगाइये।

वन विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित।

ग ३९३२

यू० पी० ऐग्रो

आपके स्वास्थ्य का रक्षक

ऐग्रो

द्वारा निर्मित उत्कृष्ट व रसीले फल पदार्थों का सेवन कीजिए।

कुमायूं की हिमाच्छादित संजीली घाटियों में जन्मे व सुरक्षित हवाओं की गोद में पले फलों से बने ऐग्रो के फल पदार्थ आपके स्वास्थ्य की कुंजी हैं।

ऐग्रो की विशेषताएँ:—

फलों के शुद्ध रस, सेब की चटनी में सोयाबीन, नाना प्रकार के फल, मुरब्बे, हरी मटर, जैम व जैली।

विस्तृत जानकारी के लिए लिखें:—

उत्तर प्रदेश राज्य कृषि औद्योगिक निगम लि०

२२, विधान सभा मार्ग, लखनऊ।

स्थापित वर्ष १९४९:५० 	फोन २५६३४
२२६९८

उत्तर प्रदेशीय सहकारी गन्ना समिति संघ लि०,

१२, राणा प्रताप मार्ग लखनऊ

प्रदेश की १३३ सहकारी गन्ना समितियों की सर्वोच्च संस्था

गन्ना संघ व सदस्य समितियाँ लगभग २२ लाख गन्ना उत्पादकों के क्रय-विक्रय सम्बन्धी सभी समस्याओं का समाधान करते हुए तथा कृषि उत्पादन व गन्ने की पैदावार बढ़ाने हेतु सभी आवश्यक साधनों को सुलभ करने में सतत् प्रयत्नशील है ।

लघु सिचाई साधनों को बढ़ावा देना, खादों का उपयोग बढ़ाने हेतु खाद-भण्डारों का निर्माण, विभिन्न प्रकार के उर्वरकों, खादों व कीट-नाशक पदार्थों का प्रबन्ध, उन्नतिशील बीजों का वितरण आदि कार्यों को सुविधा-जनक बनाते हुये कार्यान्वित करना संघ का मुख्य कार्य है ।

आधुनिकतम मशीनों से युक्त गन्ना संघ प्रेस सदस्य समितियों की मुद्रण आवश्यकताओं की पूर्ति करता है ।

हैजा

★ यह एक बहुत भयंकर जीव लेवा रोग है ।

★ बीमारी आरम्भ होते ही हैजे का टीका लगवा लेना चाहिये ।

★ खाद्य पदार्थों को मक्खियों से सुरक्षित रखना चाहिये तथा सड़ी गली वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिये ।

★ भोजन ताजा, हल्का और गर्म तथा ढका हुआ खाना चाहिये ।

★ अपनी व्यक्तिगत सफाई का तथा मकान की सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिये ।

★ जब कभी क्षेत्र में हैजा होने का संदेह हो तो पाचन में जरासा उलट फेर या मामूली अतिसार होने पर सदा सावधान रहना चाहिये । डाक्टर से तुरन्त सलाह लेनी चाहिये ।

प्रसारितः—

ग ३२९४ 	निदेशक, स्वास्थ्य सेवा एवं परिवार नियोजन, (स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो,)
उत्तर प्रदेश, लखनऊ

Regd. No. R.N. 19347-70 Govt. of India

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ–३

जो कार्य किये जा रहे हैं (सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण):—

१—(तमिळ) तिरुक्कुरळ् २—(तमिळ) कम्ब रामायण
३—(तॅलुगु) रंगनाथ रामायण ४—(कन्नड़) पम्प रामायण—जैनसाहित्य
५—(असमिया) माधवकंदली रामायण ६—(कश्मीरी) रामावतार चरित
७—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत ८—(गुजराती) गिरधर रामायण
९—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लं०कां० १०—(सिंधी) स्वामी के श्लोक
११—(मलयाळम) तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन् कृत महाभारत
१२—(ओड़िआ) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत
१३—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत मूल एवं अनुवाद।
१४—(उर्दू) 'उमराव जान अदा' के प्रसिद्धि-प्राप्त श्री 'रुसवा' का (नैतिक) उपन्यास "शरीफ़ज़ादः" सम्पूर्ण-मूल्य ४.००।
१५—(फ़ारसी) दाराशिकोह कृत ५१ उपनिषदों के फ़ारसी-भाष्य (डॉ० ताराचंद द्वारा सम्पादित तथा ईरान में प्रकाशित 'सिर्रे अक्बर') का धारावाहिक हिन्दी अनुवाद।
१६—(अ़रबी) रियाज़ुस्सालिहीन—(ज़ादें सफ़र) इस्लामी हदीसों के प्रामाणिक समुच्चय का हिन्दी रूपान्तर।
१७—(वाणी सरोवर)—विविध भाषाओं के उपर्युक्त अनुपम ग्रंथों का सानुवाद धारावाहिक देवनागरी लिप्यन्तरण का त्रैमासिक पत्र—वार्षिक मूल्य १०·००।
१८—इनके अतिरिक्त संस्कृत, पाली-प्राकृत, पारसी (ज़रथूस्त्र-गाथा) आदि के अनेक सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण-ग्रंथ।

ट्रस्ट की स्थापना से पूर्व, सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण के अन्य कार्य जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

१—(अ़रबी) क़ुर्आन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित
२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण—(पाँच काण्ड) बंगला मूल देवनागरी में लिप्यन्तरित, अवधी पद्यानुवाद—
३—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा गीता के यशस्वी अनुवादक ख़ा०ब० ख़्वाजः दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनों देवनागरी लिपि में—

विज्ञापन के लिए, व्यवस्थापक, 'वाणी सरोवर' १२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ–३ से पत्र-व्यवहार कीजिए।

वाणी प्रेस, लखनऊ-३ में मुद्रित एवं भुवन वाणी ट्रस्ट, रानीकटरा, लखनऊ द्वारा प्रकाशित।
—द्वारा नन्दकुमार अवस्थी, सम्पादक